INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION
Rajiv Gandhi University

BAHIN102
सामान्य हिंदी-एक (II)

BA (HINDI)

2ND SEMESTER

Rajiv Gandhi University
www.ide.rgu.ac.in

सामान्य हिंदी एक (II)

बी.ए. (हिंदी)

(द्वितीय सत्र)

BAHIN-102

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Ashutosh Kumar Mishra, Assistant Professor, Department of Hindi, Dr. Hari SinghGaur Vishwavidhyalaya, Sagar. (MP)

Dr. Amrendra Tripathi, Associate Professor,Department of Hindi, Mahatma Gandhi Kendriya Vishwavidhyalaya, Mothart, Bihar.

Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Infomation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.
Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च संस्थानों (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जोविश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गयाा जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 किऔर राज्य की .मी . राजधानी ईटानगर से25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा .मी . हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमफिल व . एड का .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .पी कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देशविदेश के -

प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र परीक्षाओं में भी NET | सफल हुए हैं

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक बाधाओं को दूर करने का - यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्चशिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी - भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए (आईटीई) आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है। (

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय) परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री** -**(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम** शैक्षिक कार्यक -**(सीसीपी)**्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी .ए.

के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य .ए.अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

सामान्य हिंदी-एक (II)

Syllabi- BAHIN-102	**Mapping in Book**
इकाई 1 हिंदी साहित्य का इतिहास-II आदिकाल की पृष्ठभूमि, आदिकाल की परिस्थितियां और प्रवृत्तियां, भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, परिस्थितियां और प्रवृत्तियां, रीतिकाल की परिस्थितियां और प्रवृत्तियां	**इकाई 1 : हिन्दी साहित्य का इतिहास-II**
इकाई 2 कविता-II जायसी का सामान्य परिचय, जायसी-पाठ्यांश –विनय के पद तथा वात्सल्य (गोकुल लीला) से प्रथम तीन पद, आलोचना – वात्सल्य एवं भक्ति, तुलसी : पाठ्यांश – पद संख्या 1,6 एवं 8 । आलोचना – भक्ति भावना एवं समन्वयवाद ।	**इकाई 2 : कविता -II**
इकाई 3 कविता -II घनानन्द - घनानन्द के पद; प्राचीन काव्य संग्रह; सम्पा- राजदेव सिंह; वाणी प्रकाशन, दिल्ली; पद सं. 1, 3, 11, 12, आलोचना – घनानन्द का प्रेम एवं भक्ति, रीतिमुक्त कविता के रूप में घनानन्द का मूल्यांकन, मैथलीशरण गुप्त : सामान्य परिचय, मैथलीशरण गुप्त (व्याख्या भाग), मैथलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएं	**इकाई 3 : कविता -II**
इकाई 4 व्याकरण –II लिंग, कारक, वचन, काल, वाक्य-शुद्धि, विलोम शब्द, पर्यायवाची शब्द तथा मुहावरे एवं लोकोक्तियां	**इकाई 4 : व्याकरण -II**
इकाई 5 निबंध लेखन –II अरुणाचल प्रदेश से विषय । हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित विषय।	**इकाई 5 : निबंध लेखन -II**

इकाई 1 हिंदी साहित्य का इतिहास-II

इकाई की रूपरेखा

1.0 आदिकाल

1.1 आदिकाल की परिस्थितियाँ

1.2 आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

1.3 भक्तिकाल

1.4 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

1.5 भक्तिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

1.6 रीतिकाल

1.7 रीतिकाल की परिस्थितियाँ

1.8 रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

इकाई : 2 कविता – II

2.0 जायसी का सामान्य परिचय

2.1 जायसी पाठ्यांस

2.3 तुलसीदास का सामान्य परिचय

2.4 तुलसीदास : पाठ्यांस

2.5 तुलसी की भक्ति भावना

2.6 तुलसीदास का समन्वयवाद

2.6.1 पारिभाषिक शब्द

2.6.2 अद्ूैतवाद

2.6.3 एकेश्वरवाद

2.6.4 सूफी

इकाई : 3 कविता – II

3.0 घनानंद : सामान्य परिचय

3.1 घनानंद (व्याख्या भाग)

3.4 घनानंद की प्रेम साधना और भक्ति

3.5 रीतिमुक्त कवी के रूप में घनानंद का मूल्यांकन घनानंद

3.6 मैथलीशरण गुप्त : सामान्य परिचय

3.7 मैथलीशरण गुप्त (व्याख्या भाग)

3.8 मैथलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएं

इकाई: 4 **व्याकरण –II**

शब्द-अर्थ संबंध

- विलोम शब्द
- पर्यायवाची शब्द
- मुहावरा
- लोकोक्तियाँ (कहावते)
- मुहावरा और कहावत (लोकोक्ति) की तुलना

इकाई : 5 निबंध लेखन –II

- अरुणाचल प्रदेश से सम्बंधित विषय
- हिंदी साहित्य की विविध विधाओं से सम्बंधित विषय

इकाई 1. आदिकाल

1.0 आदिकाल का सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य का आदिकाल आचार्य शुक्ल के अनुसार "संवत् 1050 वि. से लेकर 1375 वि. तक अर्थात् महाराजा भोज के समय से लेकर हम्मीरदेव के समय के कुछ पीछे तक माना जा सकता है।"
सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य, रासो साहित्य, लौकिक साहित्य आदिकाल की प्रमुख कृतियां हैं।

1.1 आदिकाल की परिस्थितियां

साहित्य मानव-समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति है। किसी भी साहित्यिक रचना का अध्ययन उसके समय और समाज से अलग होकर नहीं किया जा सकता। किसी युग के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उस युग की राजनीतिक , सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों को समझना अति आवश्यक होता है।आदिकाल का समय उलझनों से भरा रहा है। इस काल की विभिन्न परिस्थितियों का आकलन इस प्रकार है -

1. राजनीतिक परिस्थिति - राजनीतिक दृष्टि से यह युद्ध और अशांति का काल था। 8वीं शती से 14वीं शती तक यह काल खंड युद्ध,संघर्ष एवं अशांति से ग्रस्त रहा, राजाओं में संकुचित राष्ट्रीयता थी। व्यापक रूप से समूचे भारत को एक राष्ट्र के रूप में नहीं देखा गया।

2. धार्मिक परिस्थिति - इस काल में अनेक प्रकार के धार्मिक मत-मतांतरों का अस्तित्व था। भारतीय धर्म साधना में उथल-पुथल मची हुई थी।
वैदिक एवं पौराणिक धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म भी इस काल में अपना प्रभाव जमाने के लिए प्रयासरत थे।

3. सामाजिक परिस्थिति - राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के कारण समाज में विश्रृंखलता आ गयी थी। जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश्रित होते जा रही थी। सामान्य जनता अशिक्षित थी, जो साधु संन्यासियों के शापों और वरदानों की ओर दृष्टि लगाये रहती थी। पूजा-पाठ तंत्र-मंत्र और जप-तप करके लोग दुर्भिक्ष, महामारी, एवं युद्ध के संकटों को टालना चाहते थे। समाज में स्त्रीयों के प्रति पूज्यभाव नहीं था, वे मात्र भोग्या बनकर रह गयी थीं। सती प्रथा इस काल का एक भयंकर कोढ़ था। राजा और सामंत अन्तःमुखी रंगरेलियों में व्यस्त रहते थे।

3. साहित्यिक परिस्थिति - आदिकाल में साहित्य की तीन धाराएं बह रही थीं । एक ओर तो परम्परागत संस्कृत साहित्य की रचना हो रही थी, तो दूसरी ओर प्राकृत अपभ्रंश भाषा में प्रभूत साहित्य का सृजन जैन कवियों के द्वारा किया जा रहा था। तीसरी धारा हिंदी में लिखे जाने वाले साहित्य की थी। आनंदवर्द्धन, मम्मट,भोज, क्षेमेंद्र, कुंतक, राजशेखर, विश्वनाथ, भवभूति एवं श्रीहर्ष जैसी प्रतिभायें इसी युग की देन है। इस

काल में अपभ्रंश प्रमुखतः धर्म की भाषा बन गयी थी। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल, हेमचंद जैसे जैन कवियों ने जो साहित्य प्रस्तुत किया है, वह अपनी मौलिकता एवं साहित्यिकता के कारण उच्च कोटि का है।

4. सांस्कृतिक परिस्थिति - सम्राट हर्षवर्द्धन के समय भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अपने शिखर पर था हिन्दू धर्म एवं संस्कृति राष्ट्रव्यापी एकता का आधार था किन्तु कालांतर में मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन से भारत धीरे-धीरे मुस्लिम संस्कृति से भी प्रभावित होता गया। उत्सव, मेले, परिधान, आहार, मनोरंजन, आदि अनेक बातों में मुस्लिम रंग चढ़ने लगा था । दूसरी ओर हिन्दू संगीतकला, वास्तुकला, आयुर्वेद एवं गणित का प्रभाव मुस्लिम संस्कृति पर पड़ने लगा था। आदिकालीन भारतीय संस्कृति निश्चित रूप से ह्लासोन्मुख थी ।

1.2 आदिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां

आदिकाल में प्रमुख रूप से रासो साहित्य की रचना हुई। चुकी जैन साहित्य अपभ्रंश भाषा में लिखा गया है इसलिए उसे हम आधारभूत सामग्री के रूप में नहीं ले सकते। रासो ग्रंथों में भी बहुत सारे ग्रंथ मूल रूप से आदिकाल में ही रचा गया, पर बहुत सारे ग्रंथों को कालांतर में परिवर्तित एवं परिवर्द्धित किया गया।अतः रासो साहित्य की प्रमुख प्रवृतियों को ही आदिकाल की प्रमुख प्रवृतियां कहना समीचीन प्रतीत होता है। इन ग्रंथों में पायी जाने वाली सामान्य प्रवृतियां का विवेचन इस प्रकार से किया जा सकता है -

1. ऐतिहासिकता का आभाव - रासो साहित्य के रचयिताओं ने जिस तरह के वर्णन चरित्र-नायक को लेकर किये हैं, वे तत्कालीन इतिहास से मेल नहीं खाते, घटनाओं, नामावली,तिथियों का जो विवरण इनमें दिया गया है वह इतिहाससम्मत नहीं है। इन ग्रन्थों से किसी ऐतिहासिक तथ्य एवं सत्य का उदघाटन नहीं होता।

2. युद्ध वर्णन में सजीवता - रासो ग्रंथों में किये गए युद्ध वर्णन सजीव प्रतीत होते हैं। इन काव्य ग्रंथों में जहां-जहां युद्ध-वर्णन के प्रसंग हैं वहां-वहां ऐसा लगता है जैसे कवि युद्ध का आंखों देखा हाल सुना रहा है। चारण कवि कलम के ही नहीं तलवार के भी धनी थे। इन कवियों ने केवल सैन्य बल का ही नहीं अपितु योद्धाओं की उमंगों, मनोदशाओं एवं क्रियाकलापों का भी सुंदर वर्णन किया है।

3. प्रामाणिकता में संदेह - आदिकाल के अधिकांश रासो कवियों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। पृथ्वीराज रासो जो इस काल की प्रमुख रचना बताई गई है, वह भी अप्रामाणिक मानी गई है।

4. वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता - युद्धों का वर्णन होने से वीर रस की योजना इनमें अनायास ही हो गई है। वीरों के मनोभाव एवं अदम्य उत्साह का जैसा वर्णन रासो काव्यों में किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। नायिका के रूप-सौंदर्य के साथ-साथ वय:संधि और षट्ऋतु वर्णन का सम्यक समावेश भी रासो ग्रंथ में किया गया है।

5. आश्रयदाताओं की प्रशंसा - रासो ग्रंथ के रचयिता चारण कहे जाते थे और अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य रचना करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। इन कवियों ने आश्रयदाता के शौर्य, यश, वैभव, का काल्पनिक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया साथ ही प्रतिपक्षी राजा की हीनता वर्णन भी खूब बढ़ा-चढ़ा कर लिखा।

6. डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग - आदिकालीन रासो साहित्य में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह आधुनिक हिंदी से बहुत भिन्न है। राजस्थानी भाषा के जिस मीले-जुले रूप का प्रयोग रासो ग्रंथों में किया गया है उसे डिंगल नाम दिया गया है साथ ही तत्कालीन अपभ्रंश और ब्रजभाषा के मेल से बनी भाषा को पिंगल कहा जाता है, जिसका प्रयोग भी इन रासो ग्रंथों में खूब किया गया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल और भक्तिकाल के उपरांत स्थापित एक ऐसा कालखंड है जिसे हिंदी साहित्य में 'रीतिकाल' के नाम से अभिहित किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का उत्तरवर्ती मध्यकाल जिसे भक्तिकाल के पश्चात् परिगणित किया जाता है, 'रीतिकाल' नामकरण के कारण मतभेद का विषय बना रहा है। इस रीतिकाल को मिश्रबन्धुओं ने "अलंकृत काल' से अभिहित किया तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे "रीतिकाल" कहा तो पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को इसमें श्रृंगारिकता झलकी और उन्होंने इसका नाम "श्रृंगार काल" रखा तो डॉ० रमाशंकर शुक्ल ने काव्य की कलात्मकता से आकृष्ट होकर इसे "काव्यकला काल" की संज्ञा से विभूषित किया। इस युग में अतिरंजना और अलंकरण का बाहुल्य मिलता है लेकिन रीतिकाल में कवियों ने एक साथ संस्कृत काव्य-शास्त्रीय परम्परा, अर्थ-प्राप्ति-साधन, राजभक्ति गायन के औचित्य का निर्वाह भी गम्भीरतापूर्वक किया है। यही कारण है कि इस काल में विविध काव्यांगों पर भी ग्रन्थों का प्रणयन संभव हुआ है।

ईकाई–2 भक्तिकाल और रीतिकाल की परिस्थितियाँ, वर्गीकरण एवं प्रवृत्तियां

पृष्ठभूमि, परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियां

2.0 परिचय

2.1 इकाई के उद्देश्य

2.2 भक्तिकाल का काल–विभाजन और नामकरण

2.3 भक्तिकाल की परिस्थितियां

2.4 भक्तिकाल की प्रवृत्तियां

2.5 रीतिकाल का काल–विभाजन और नामकरण

2.6 रीतिकाल की परिस्थितियां

2.7 रीतिकाल की प्रवृत्तियां

2.8 सारांश

2.9 मुख्य शब्दावली

2.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

2.0 परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमें मध्यकाल का अध्ययन करते हुए दो उपकालखण्डों का अध्ययन करना है जिसे हम भक्तिकाल और रीतिकाल के

नाम से जानते हैं। भक्तिकाल का अध्ययन करते हुए हम भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग को देख सकेंगे। जिसमें उस समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ एवं पृष्ठभूमि का आकलन करेंगे। जिसमें हमारा भारतीय समाज जीवन के उत्कृष्ट दर्शन एवं मूल्यबोध स्थापित किया है। जिससे मनुष्य के जीवन स्तर में, बदलाव के साथ नैतिक आदर्श देखने को मिलता है।

उत्तर मध्यकाल जिसे हम रीतिकाल कहते हैं। भक्तिकाल से कई अर्थों में भिन्न है। जिसका कारण हम प्रकृति के विकास में बदलाव को भी मान सकते हैं। अर्थात् इस समय की परिस्थितियाँ भक्तिकाल से अलग थीं। रीतिकाल राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भक्ति काल से अलग है। जिसमें हमें राज्य की विलासिता, समाज की स्थिरता एवं संस्कृति की पौढ़ता देखने को मिलेंगे। इस समय की साहित्य श्रृंगार और अलंकार से युक्त साहित्य है, जिसमें साहित्य बहुत फला–बढ़ा है। जिसका हमें ज्ञान इस अध्ययन के द्वारा प्राप्त होगा।

2.1 ईकाई के उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के दौरान आप जान सकेंगे :

1. भक्तिकाल का काल–निर्धारण और नामकरण के संबंध में।
2. भक्तिकाल के राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के संदर्भ समाज की स्थिति को आप जान सकेंगे।
3. भक्तिकाल की प्रवृत्तियों को जान और समझ सकेंगे।
4. भक्तिकाल के मूल भावबोध को अन्य कालों से अलग कर सकेंगे।
5. रीतिकाल का काल–निर्धारण और नामांकन के संबंध में आप जान सकेंगे।

6. रीतिकाल के राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

7. रीतिकाल के प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे।

8. रीतिकाल के श्रृंगारिक और सांस्कृतिक साहित्य को समझ और समझा सकेंगे।

9. मध्यकाल का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

2.2 भक्तिकाल का काल–विभाजन और नामकरण

ऐतिहासिक दृष्टि से भक्तिकाल का काल–निर्धारण भक्ति आन्दोलन के विकास को ध्यान में रखकर छठी शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक माना गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में साहित्य के काल–खण्ड का निर्धारण उस युग के परिस्थितियों और प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर किया जाता है, क्योंकि हर युग अपने पूर्व के युग से कई अर्थों में भिन्न होता है। इस बदलाव का कारण युग–विशेष के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक संदर्भ का बदल जाना हैं। भक्तिकाल का काल–विभाजन और नामकरण भी इस युग के संदर्भ बदल जाने के कारण हुआ, जिसमें भारतीय जनमानस के बीच भक्ति की भावधारा प्रबल होती गई है। साहित्य के इतिहास में मध्यकाल को दो उपवर्गों में विभाजित किया गया जिसमें पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल तथा उत्तरमध्यकाल को रीतिकाल कहा गया। शुक्ल जी ने भक्तिकाल की दो शाखाएँ निर्धारित किया है– (क) निर्गुण काव्य–धारा और (ख) सगुण काव्य–धारा। निर्गुण काव्य–धारा में दो उपधाराएँ हैं– ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। सगुण के भी दो उपधाराएँ है– कृष्ण–काव्य और राम–काव्य। शुक्ल जी ने भक्तिकाल का समय संवत 1375–1700 तक निर्धारित किया है जिसे ई० सन के रूप में 1318 से 1643

'शुक्ल जी की स्थापना में हेर–फेर की अधिक गुंजाइश तब तक नहीं दिखाई देती, जब तक वैसी सामग्री क्रमबद्ध रूप में न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध न हो जाए। फिर भी, भक्ति साहित्य में उन वैष्णवेत्तर रचनाओं को सम्मिलित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, जो विषय वस्तु की दृष्टि से भी उक्त सीमा के अनुकूल पड़ती है।' शुक्ल जी ने भक्तिकाल का काल–निर्धारण बहुत ही सोच–विचार कर किया है जिससे परवर्ती विद्वान भी सहमत हैं। डॉ. नगेन्द्र भक्तिकाल को अध्ययन की सुविधा के लिए चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक मानते हैं जो उचित है, क्योंकि आदिकाल की रचना–प्रवृत्तियाँ चौदहवीं शती के मध्य तक बलवती रही थीं।

2.3 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

भक्तिकाल में भारतीय जनमानस को राजनीतिक तथा सामाजिक बदलाव के कारण कई प्रकार के परिवर्तन देखने को मिले। जिसमें भारत की राजनीतिक परिस्थिति तुगलक वंश, सैयद वंश तथा लोदी वंश के शासन काल के रूप में देखने को मिलता है, जो उत्तर भारत में 1325 ई० से 1526 ई० तक रहा। लोदी वंश का सर्वाधिक प्रभावशाली सुल्तान इब्राहीम लोदी था, जिससे 1526 ई० में बाबर ने पानीपत के मैदान में युद्ध किया। भक्तिकाल के द्वितीय चरण में मुगलों का शासन रहा। बाबर, हुमायुं, अकबर, शाहजहाँ के शासन काल तक भक्तिकाल की समय सीमा है। अकबर का शासन सुव्यवस्थित था। फिर भी यह कहा जा सकता है कि इस काल के अधिकांश शासकों में सहिष्णुता नहीं थी। हिन्दू–मुस्लिम जनता में सद्भाव नहीं था।

भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थिति ऐसी थी कि वर्ण व्यवस्था में आस्था रखने वाले हिन्दू छुआ–छूत तथा ऊंच–नीच की भावना रखते थे जिसका फायदा मुसलमानों ने उठाया। मूसलमान हिन्दू कन्याओं का अपहरण कर अपने

घर में ले आते थे तथा इनके साथ अत्याचार करते थे। इन्हीं कारणों से इस युग में पर्दा–प्रथा की खास आवश्यकता बन गई थी। साधु–संतों में पाखण्ड, आडम्बर के बढ़ जाने से असहाय हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन कर लिया और मुसलमान बन गए। मुसलमानों के साथ दीर्घकाल तक सम्पर्क में रहने के कारण वास्तुकला, चित्रकला एवं संगीत के क्षेत्र में इन दोनों में आदान–प्रदान होने लगा।

भारतीय समाज में वर्णों और जातियों का विशिष्ट महत्व रहा है। समय–समय पर धर्म–विश्वासों, रीति–रस्मों और आचार–विचार में परिवर्तन होते रहे हैं। भक्तिकाल का समाज युद्ध में जीतने–हारने का आदि रहा है जो कालांतर में सामंजस्य की भावना और समन्वय की चेतना से युक्त होने लगा। ऐसा ऐतिहासिक दृष्टि से होता रहा है। तत्कालीन भारतीय समाज 'सुविधा–संपन्न' और 'असुविधा–ग्रस्त' इन दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा–महाराजा, अमीर–सामंत और सेठ–साहूकार आते थे, जिसमें उल्लासपूर्ण प्रवृत्ति पायी जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज्यकर्मचारी और घरेलू उद्योग में लगी सामान्य जनता थी। जो प्रथा–परंपरा का पालन कर संतोष की सांस लिया करती थी।

भक्तिकाल की धार्मिक परिस्थिति बहुत ही विरोधाभाषी रहा है। जिसमें बौद्ध–धर्म विकृत होकर दो शाखाओं में 'हीनयान' तथा 'महायान' में बट चुका था। महायान सम्प्रदाय ने जनता के निम्नवर्ग को चमत्कार दिखाकर प्रभावित कर लिया तथा धर्म के नाम पर वाममार्ग को अपनाकर मद्य–मांस को ग्रहण किया। नाथों एवं सिद्धों में कर्मकाण्ड के स्थान पर गुरू को महत्व दिया गया।

मुसलमान मूर्ति भंजन में विश्वास रखते थे। वे हज यात्रा करते थे, मस्जिद में अजान देते थे, रोजा रखते थे। मुसलमानों में धर्म का वाह्याडम्बर तो था, आन्तरिक शुद्धि का भी अभाव था।

भक्ति का जो स्रोत दक्षिण भारत में प्रकट हुआ, उसके प्रचार–प्रसार के लिए इस समय उत्तर भारत में अनुकूल वातावरण था। बौद्ध धर्म की विकृतियों का विरोध करते हुए शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया। विष्णु के अवतारों में राम–कृष्ण के प्रति आस्था, विश्वास में वृद्धि हुई और रामानन्द ने भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया। मन और धर्म की शुद्धता भक्ति भाव से ही होती है। तुलसी के इस सिद्धान्त को रामानन्द ने ही आधार भूमि दी थी। श्री कृष्ण के लोकरंजनकारी स्वरूप का चित्रण भागवत के दशम–स्कन्ध के आधार पर कविगण करने लगे।

सूफी धर्म का प्रचार भी एक बड़े क्षेत्र में हो रहा था जिसमें हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतिक में समन्वय का आधार सूफियों ने तैयार किया। इस्लाम धर्म में शरा और बेशरा दो कोटियां है। भारतीय सूफी प्रमुख रूप से बेशरा सम्प्रदाय के हैं, जो इस्लाम के अनुयायी होकर भी कट्टर मुसलमानों से भिन्न हैं। सूफियों के पांच सम्प्रदाय प्रसिद्ध है–

1. चिश्ती, 2. कादिरी, 3. सुहरावर्दी, 4. नक्शबन्दी, 5. शत्तारी। इन सम्प्रदायों की भी शाखाएं–प्रशाखाएं हैं।

2.4 भक्तिकाल की प्रवृत्तियां

साहित्य के इतिहास में जार्ज ग्रियर्सन ने उत्तर के भक्ति आन्दोलन को ईसाइयत की देन सिद्ध किया है। ग्रियसर्न के इस विश्लेषण का तर्को द्वारा खण्डन बाद के इतिहासकारों ने किया है। फिर भी ग्रियर्सन महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने भक्ति आन्दोलन की पहचान सबसे पहले की तथा भक्तिकाल

को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा। ग्रियर्सन के बाद हिन्दी साहित्य का पहला वैज्ञानिक इतिहास आचार्य रामचंद्र शुक्ल का है। शुक्ल जी की दृष्टि में भक्ति साहित्य हतोत्साहित और पराजित हिन्दू जनता की प्रतिक्रिया है। उनके अनुसार मुसलमानों का राज्य स्थापित हो जाने पर मुसलमान शासकों द्वारा देव मंदिर गिराए गए और हिन्दुओं के पूज्य प्रतिष्ठित पुरुषों का अपमान किया जाने लगा। यह सब होने के बावजूद हिन्दू जनता कुछ नहीं कर सकती थी। शुक्ल जी के शब्दों में– 'ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे।' आगे चलकर जब मुसलमानों का अत्याचार बढ़ गया तब हिन्दू जनता में भक्ति भावना का प्रबल विकास हुआ। हिन्दुओं ने अपने अराध्य की भक्ति विभिन्न रूपों में करनी शुरू कर दी। भक्तिकाल में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे महत्वपूर्ण कवियों ने जनता का मार्गदर्शन किया। इस काल में गुरू का महत्व ईश्वर के समान या उससे बढ़कर बताया गया है। कबीर दास ने कहा है कि–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।

बलिहारी गुरु अपने गोविन्द दियों बताय।।

भक्तिकाल के सभी कवियों में भक्ति भावना की प्रधानता विद्यमान है। इस काल के साहित्य में धार्मिक दार्शनिक आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय की भावना मिलती है। तुलसीदास के रामचरितमानस में समन्वय की विराट चेष्टा मिलती है, जिसमें भक्ति तथा ज्ञान–दर्शन के साथ भाषाशैली और सगुण–निर्गुण के बीच समन्वय करके भारतीय जनमानस को दिखाया है। तुलसीदास जी ने स्वतंत्र रह कर रचना किया है, जिससे उस युग के काव्य रचना में नए सामाजिक सरोकार दिखाई देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास प्रसिद्ध कवि समन्वयवादी लोकनायक, उपदेशक महान भक्त तथा महान दार्शनिक थे।

तुलसी के समय में अनेक धार्मिक मत एवं दार्शनिक विचार प्रचलित थे जिसमें परस्पर विरोध व्याप्त था। जिसको इन्होंने बहुत अंशों तक दूर कर अपनी समन्वयवादी दृष्टि का परिचय दिया और अपना एक निश्चित दार्शनिक मत स्थापित किया। माया का प्रभाव जीव पर होता है ईश्वर पर नहीं, अतः ईश्वर के समान चेतन, अमत्य, अविनाशी एवं सहज सुख का भंडार है, किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण यह अपने मूलरूप को भूल चुका है।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी

सो माया वस पर्‌यो गोसांई। बंध्यो कीर मरकट की नाई।

भारतीय समाज की पतनोन्मुख दशा का पता तुलसी के कलियुग वर्णन से चलता है। कवितावली में उन्होंने इस दुरवस्था का चित्रण करते हुए लिखा है–

खेती न किसान को भिखारी को न भीख भलि।

बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।

जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस।

कहैं एक–एकन्ह कहाँ जाई का करी।

तुलसीदास जी कहते हैं कि समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी भूमिका का निर्वाह करे, किन्तु जब ब्राह्मण लोलुप और कामी होगा, स्त्रियां पतिव्रत धर्म का पालन न करके अन्य पुरुषों को रिझाती फिरेंगी, विधवाएँ शृंगार करके समाज को भ्रष्ट करने का कार्य करेगी तब समाज रसातल को चला जायेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी नारी को गृहलक्ष्मी एवं अन्नपूर्णा मानते थे तथा उसे परिवार की धूरी स्वीकार करते थे। पत्नी का क्या धर्म है इसका विवेचन वे अनसूया सीता प्रसंग में इस प्रकार करते हैं–

अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।

धीरज धर्म मित्र अरू नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।

वृद्ध रोगवस जड़ धन हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पांव जमपुर दुख नाना।

भक्तिकाल में तुलसीदास जी ने सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्श को प्रस्तुत करने के साथ रामराज्य की परिकल्पना के द्वारा जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह तत्कालीन युग के साथ–साथ वह हमारे वर्तमान युग को भी दिशा दे रहा है। राम के राज्य में सभी नर–नारी उदार थे, परोपकारी थे और द्विजों के सेवक थे। स्त्रियाँ भी मन, बचन और कर्म से पति का हितचिन्तन करती थी।

सब उदार पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर नारी।

एक नारिव्रत रत सब भारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी।।

तुलसीदास जी की काव्य–दृष्टि सत्यं शिवं और सुन्दरं का समन्वय करती है। जिसके परिणाम स्वरूप भक्तिकाल का समाज तथा आज के समाज ने लाभ उठाया है।

भक्तिकाल के 'काव्य–शृंगार' के अधिकारी विद्वान सूरदास है। सूरदास के काव्य में शृंगार के दोनों पक्षों का मार्मिक चित्रण उपलब्ध होता है, संयोग शृंगार एवं वियोग शृंगार। सूरदास वात्सल्य एवं शृंगार के रस सम्राट कहे जाते हैं, क्योंकि इन दोनों रसों में जितनी भी स्थितियाँ सम्भव हैं, उनका निरूपण

सूरदास ने अपने काव्य में किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– "वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्‌घाटन सूर ने अपनी बंद आखों से किया, उतना और किसी कवि ने नहीं। इस क्षेत्र का कोना–कोना वे झांक आए।" उनके शृंगार के आलम्बन राधा कृष्ण हैं। राधा और कृष्ण दोनों ही मनोहर सौंदर्य से मंडित है। राधा की सुन्दरता का वर्णन सूरदास इन शब्दों में करते हैं।

चन्द्रमुखी भौहें कलंक बिच चन्दन तिलक लिलार।

मनु बंनी भुवगिनी परसत, सव्रत सुधा की धार।।

कृष्ण के रूप का सम्मोहन भी राधा के सिर चढ़कर बोल रहा है। अपनी आँखों में उस रूप को उसने इस प्रकार बसा लिया है, कि अब मन कहीं और लगता ही नहीं।

सूरदास के 'भ्रमरगीत' प्रसंग के अन्तर्गत गोपी–उद्धव संवाद के प्रसंग को बहुत सजीव ढंग से चित्रित किया गया है। उसमें निर्गुण पर सगुण की विजय का दार्शनिक उद्देश्य भी बतलाया गया है। साथ ही भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियों की मनोदशा का बड़ा ही सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए उन्होंने गोपियों की भाव–विहव्ल दशा का चित्र उतारे हैं। इस उदहारण में गोपियों के सहज व्यंग्यों का रूप देखा जा सकता है। कबीर के काव्य में रहस्यवाद के सभी सोपान उपलब्ध होते हैं। रहस्यवाद की ये स्थितियां है जिज्ञासा की वृत्ति, परमात्मा के विरह की अनुभूति, मिलन की उत्कंठा, परमात्मा से मिलन का आनन्द। कबीर ने उस निर्गुण निराकार परमात्मा को सम्पूर्ण संसार में व्याप्त पाया है, वे उसे जानना चाहते हैं, उसकी सत्ता की अनुभूति उन्हें समग्र जग में होती है। वे कहते हैं–

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित ताल।

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।

परमात्मा के उत्कट विरह की अनुभूति कबीर की उन साखियों में उपलब्ध होती है जो 'विरह कौ अंग' शीर्षक से संकलित की गई हैं, यथा:

विरह भुवंगम तन बसै मन्त्र न लागै कोय।

राम वियोगी ना जिए जिवै तो बौरा होए।।

प्रियतम से मिलन की कैसी तीव्र उत्कण्ठा उनके मन में व्याप्त है:

बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।

जिय तरसे मुझे मिलन कौ मन नाहीं विश्राम।

कबीर के 'रहस्यवाद' में मिलन के आनन्द का वर्णन भी है। 'दुलहिनि गावहु मंगलाचार' वाले पद में यह भाव विद्यमान है। आज राम रूपी पति से मिलन होगा। मैं साधना रूपी यौवन के चरम बिन्दु पर पहुँच चुकी हूँ और अपने तन–मन को उनके साथ एकाकार कर दूँगी।

कबीर के रहस्यवाद की कुछ अन्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

1. कबीर में साधनात्मक रहस्यवाद अधिक है।
2. कुण्डलिनी योग से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली उन्होंने नाथपंथियों से ग्रहण की है।
3. कुण्डलिनी, सहस्रार चक्र, षटचक्र, सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला आदि शब्द इसी प्रकार के हैं।
4. उनके रहस्यवाद पर हठयोगियों एवं सिद्धों का भी प्रभाव है।

जायसी का 'पद्मावत' एक प्रेमाख्यानक काव्य है जो सूफी प्रेम–पद्धति पर आधारित है। इसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई। इसमें इश्क मजाजी से इश्क हकीकी तक पहुंचने की कोशिश है। इस सृष्टि में जो सौन्दर्य है, वह प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सौन्दर्य का साकार रूप पद्मावती है। प्रेमलोक ही ज्योतिलोक है। जो इस सौन्दर्य के दर्शन कर लेता है, उसे फिर कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसे तो बस वही सौन्दर्य सब जगह दिखाई देता है।

हिय की जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अँधियर भी बूझा।

लटि दिष्टि भामा सौं रूरी। पलटि न फिरी जानि के झूरी।

सूफी प्रेम पद्धति के अनुसार जायसी के काव्य में लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है। पद्मावत के अन्त में जायसी ने समस्त कथानक को रूपक घोषित कर दिया है–

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।

गुरु सूआ जेहि पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।

नागमती यह दुनिया धन्धा। बांचा सोई न एहि चित बन्धा।।

राघव दूत सोइ सैतानू।। माया अलाउदीं सुल्तानू।।

इस रूपक को यहा इस प्रकार देखा जा सकता है, जिसमें रत्नसेन साधक है, जबकि पद्मावती परमात्मा का प्रतीक है तथा हीरामन तोता गुरु है।

सिंघलद्वीप हृदय का प्रतीक माना गया है तथा नागमती को दुनिया धन्धा माना है। राघव चेतन को शैतान का प्रतीक तथा अलाउद्दीन को माया का प्रतीक माना गया है।

जायसी ने प्रेम को सिद्धि तथा मुक्ति देने वाला माना है। साधक प्रेम में व्याकुल होकर तड़पता है। यह तड़पन सुख है। तथा यही मुक्ति की ओर ले जाती है। यह सूफी मत के अनुसार प्रेम की पराकाष्ठा है। जायसी कहते हैं –

भले ही प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा प्रेम जेहि खेला।।

इस प्रेम पथ पर वही अग्रसर हो सकता है जो संसार से उदासीन होकर कष्ट सहने को तत्पर हो। प्रेम जीवनोत्सर्ग की प्रेरणा देता है। यह प्रेम–साधना आसान नहीं है और हर किसी के बूते की बात नहीं है। प्रेम–पथ लौकिक साधनों से प्राप्त नहीं होता। इसे पाने के लिए प्राणी को उदासी, योगी संन्यासी बनकर कष्ट सहना पड़ता है। रत्नसेन ऐसा ही साधक है जो पद्मावती को प्राप्त करने के लिए सिद्धि के सोपानों से गुजरता है। जायसी शरीरासक्ति को प्रेम–मार्ग की बाधा मानते हैं।

जायसी ने आलम्बन के रूप में प्रकृति का चित्रण करते हुए, मानसरोदक खण्ड के अन्तर्गत उसके निर्मल जल, सुन्दर घाट, मनोरम सीढ़ियों एवं उसमें खिले हुए कमलों की शोभा वर्णित की है–

मान सरोदक बरनौं काहा। भरा समुद्र अस अति अवगाहा।

पानि मोति अस निरमल तासू। अमृत आनि कपूर सुवासू।।

फूला कंवल रहा होइ राता। सहस–सहस पखुरिन कर छाता।।

जायसी ने उद्दीपन के रूप में प्रकृति का चित्रण करते हुए, यह स्पष्ट किया है कि जहां प्रकृति मानव के सुख–दुख को उद्दीप्त करती है, वहां उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण होता है। राजा रत्नसेन और पद्मावती को संयोग काल में प्रकृति सुखद लगती है। चमकती हुई बिजली सोने की चमक जैसी प्रतीत होती है और दादुर एवं मोर के शब्द सुहावने लगते हैं–

पदमावति चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सोहाई।।

चमकि बीजु बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।।

किन्तु वियोग काल में वही प्रकृति नागमती को अत्यन्त भयकारक एवं दुःखद प्रतीत होती है। वर्षाकाल में आकाश में चमकती बिजली ऐसी लगती है मानो तलवार चमक रही है, जबकि बरसती हुई बूंदें बाणों की वर्षा जैसी लगती हैं।

खड्ग बीजु चमकै चहुं ओरा। बुन्द बान बरिसहिं घन घोरा।।

जब कवि प्रकृति में उस अज्ञात सत्ता को प्रतिबिम्बित देखता है तब वहां रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण माना जाता है। कवि ने पद्मावती के रूप में परमात्मा के सौन्दर्य एवं तेज को प्रकृति में व्याप्त दिखाकर रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण किया है:

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥

उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा।।

जायसी के अनुसार प्रेम–पथ में काया के नौ द्वारों और पंच विकारों पर अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है, अन्यथा सिद्धि के विषय में सोचना भी व्यर्थ है। जायसी सांसारिक भोगवाद के विरोधी थे।

2.5 रीतिकाल का काल–विभाजन और नामकरण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सम्वत् 1700 वि. से 1900 वि. (1643 ई. से 1843 ई.) तक के काल–खण्ड को रीतिकाल कहा है। इसके लिए शुक्ल जी ने यह तर्क दिया है कि इस कालावधि में कवियों की दृष्टि काव्यांगों और लक्षण एवं उदहरण देने वाले ग्रंथों की रचना करने में टिकी रही। मध्यकाल को जिन दो काल–खण्डों में बांटा गया है, उसे पूर्वमध्यकाल और उत्तरमध्यकाल कहा गया है। पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल तथा उत्तरमध्यकाल को रीतिकाल कहा गया है।

रीतिकाल के लिए जो नाम दिए गए हैं वे इस प्रकार हैं–

1. अलंकृत काल– यह नाम मिश्र बन्धुओं के द्वारा दिया गया है।
2. शृंगार काल– यह नाम विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने दिया है।
3. रीतिकाल– यह नाम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दिया है।
4. कलाकाल– यह नाम रमाशंकर शुक्ल रसाल ने दिया है।

मिश्र बन्धुओं का तर्क यह है कि इस काल में कविता को अलंकृत करने पर अधिक बल दिया गया है, इसलिए इसका नाम अलंकृत काल होना चाहिए, किन्तु इस काल में लक्षण ग्रन्थों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई है तथा अलंकृत काल कहने से इस प्रवृत्ति का बोध नहीं हो पाता अतः यह नाम समीचीन नहीं है।

शृंगार काल कहे जाने के पक्ष में यह तर्क दिया गया है कि इस काल के कवियों की प्रवृत्ति शृंगार वर्णन करने की रही थी, किन्तु शृंगारी कवियों ने भी काव्यांग निरूपण की ओर रूचि दिखाई है। ऐसी स्थिति में केवल शृंगार काल कहने से रीतिकाल की सम्पूर्ण कविता का बोध नहीं हो पाता। काव्यांश चर्चा तत्कालीन समय की सामान्य प्रवृत्ति थी और कविगण उसमें वैसा ही आनन्द लेते थे जैसा भक्तिकाल में ब्रह्मज्ञान चर्चा में लिया जाता था। लक्षण ग्रन्थों का निर्माण दूसरों को काव्य की रचना–पद्धति का ज्ञान कराने के उद्देश्य से किया जाता था अर्थात् ये कवि 'आचार्य' की भूमिका का निर्वाह करने में गौरव का अनुभव करते थे।

रीतिकाल में 'रीति' शब्द का प्रयोग 'काव्यांग निरूपण' के अर्थ में हुआ है। ऐसे ग्रन्थ जिनमें काव्यांगों के लक्षण एवं उदाहरण दिए जाते हैं, रीति ग्रन्थ कहे जाते हैं। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने रीति निरूपण करते हुए लक्षण ग्रन्थ लिखे, अतः इस काल की प्रधान प्रवृत्ति 'रीति–निरूपण' को माना जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने कालों के नामकरण प्रधान प्रवृत्ति के आधार पर किए हैं अतः रीति की प्रधानता के कारण इस काल का नामकरण उन्होंने रीतिकाल किया है। रीति से उनका तात्पर्य पद्धति, शैली और काव्यांग निरूपण से है।

रीतिकाल का प्रारम्भ चिन्तामणि कृत 'रस विलास' और मतिराम कृत 'रसराज' से माना जा सकता है, यद्यपि इनकी रचना 1633 ई० की है तथा रीतिकाल के अन्तिम कवि हैं– ग्वाल जिनकी रचना 'रसरंग' 1853 ई० के आस–पास की है। निष्कर्ष यह है कि किसी काल का प्रारम्भ एक निश्चित तिथि से मानकर एक निश्चित तिथि पर उसे समाप्त मान लेना पूर्णतः तर्कसंगत नहीं है।

2.6 रीतिकाल की परिस्थितियाँ

रीतिकालीन साहित्य की परिस्थितियाँ भक्तिकालीन साहित्य से अलग है। रीतिकाल के राजनीति में मुगलों का वैभव काल, पराभव काल एवं अंग्रेजों का उदय काल देखा गया है। शाहजहां ने ताजमहल एवं मयूरसिंहासन जैसे वैभव के प्रतीक निर्मित कराए, किन्तु 1658 ई० में उसके पुत्र औरंगजेब ने सत्ता पर अधिकार किया, किन्तु उसकी धार्मिक असहिष्णुता एवं अहम्मन्यता के कारण जागीरदारों एवं हिन्दू राजाओं ने उपद्रव प्रारम्भ कर दिए। उसके शासन का अधिकांश समय इन उपद्रवों को दबाने में ही व्यतीत हुआ। 1707 ई० में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसका द्वितीय पुत्र शाहआलम गद्दी पर बैठा और 1712 ई० से मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। अगले 50 वर्षों तक अस्थिरता रही। छोटे–छोटे जागीरदारों ने भी अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। विलासवृति में बढ़ोतरी हुई, केन्द्रीय सत्ता की पकड़ ढीली हो गई। 1738 ई० में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल साम्राज्य की नींव हिला दी और रही सही कसर 1761 ई० में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण ने पूरी कर दी। विदेशी व्यापारियों विशेषतः अंग्रेजों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और धीरे–धीरे शक्ति संचय करके वे 1830 ई० तक लगभग समस्त उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य जमा बैठे। वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गई और मुगल सम्राट नाममात्र के शासक रह गए।

1857 ई० में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान यह प्रयास हुआ कि मुगलों को पुनः सत्ता पर स्थापित किया जाए, पर ये प्रयास असफल हो गए। अवध के विलासी शासकों का अन्त भी मुगलों के सदृश रहा। राजपूताने में भी विलास एवं बहुपत्नी प्रथा के कारण छोटे–छोटे साम्राज्य धीरे–धीरे कारुणिक अन्त की ओर अग्रसर हुए। सामन्तवादी प्रवृति का बोलबाला इस काल में था और सामन्तवाद के दोष सर्वत्र व्याप्त थे। एक ओर विलासी शासकों, सामन्तों, अधिकारियों का बोलबाला था तो दूसरी ओर गरीब जनता पिस रही थी। विलासिता की बढ़ती प्रवृति के कारण नारी को सम्पत्ति माना जाने लगा। विलास के उपकरणों का संग्रह करना एवं सुरा–सुन्दरी में लीन रहना उच्च वर्ग के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया था। मध्यम वर्ग भी उन्हीं के अनुकरण में लीन रहता था। किसी की कन्या का बलात् अपहरण कर लेना उच्च वर्ग के लिए सामान्य बात थी। अभिजात वर्ग में हरम सुन्दरी नारियों एवं रक्षिताओं से भरे रहते थे। विवाहित स्त्रियां भी पति प्रेम न पाने के कारण इधर–उधर प्रेम सम्बन्ध बनाती रहती थी। निष्कर्ष यह कि समाज का नैतिक अंकुश शिथिल हो गया था एवं विलासवृत्ति की प्रधानता सर्वत्र व्याप्त थी।

अकबर, जहांगीर एवं शाहजहां की उदार नीति के कारण हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों में जो समन्वय हुआ था वह औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के कारण छिन्न–भिन्न हो गया। मन्दिरों, मठों के पीठाधीश भी लोभी प्रवृत्ति के कारण राजाओं और सेठों को गुरुदीक्षा देकर भौतिक लाभ प्राप्त कर रहे थे। राम–कृष्ण की लीलाओं में अपने विलासी जीवन की संगति खोजी जा रही थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से दूर हटकर कर्मकाण्ड एवं बाह्याडम्बरों तक सीमित रह गए थे। लोग अपनी विलासी मनोवृत्तियों को पूर्ण करने की मनोकामना से हिन्दू मन्दिरों एवं पीरों के तकियों पर जाने लगे थे। धर्म स्थान भ्रष्टाचार एवं पापाचार के केन्द्र बन गए थे।

जनता के अन्धविश्वास का लाभ मुल्ला–मौलवी तथा पण्डित–पुरोहित उठा रहे थे। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में निवास कर रहे सन्त अब भी नैतिकता के ध्वजवाहक बने हुए थे किन्तु उनका प्रभाव उत्तर भारत में न था।

इस काल में चित्रकला, स्थापत्यकला एवं संगीत कला का विशिष्ट स्थान रहा मुगलों की राजकीय भाषा फारसी थी, किन्तु काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा प्रतिष्ठि थी। इस युग की चित्रकला राजसी ठाठबाट तथा जनजीवन दोनों का चित्रण करती दिखाई पड़ती थी। राजस्थानी शैली एवं कांगड़ा शैली के चित्रों में 'रागमाला' एवं राधाकृष्ण की लीलाओं, लोकगाथाओं, महाभारत की कथाओं का चित्रण हुआ है। शाहजहां के द्वारा बनवाई गई इमारतों में सौन्दर्य का समावेश हुआ है। आगरा का ताजमहल तथा दिल्ली के लाल किले का दीवाने खास इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। कवियों एवं कलाकारों को राज्याश्रय इस काल में खूब मिला, जिससे साहित्य और कला का बहुमुखी विकास हुआ।

2.7 रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल के कवि अपने काव्यत्व का प्रर्दशन राजाश्रय में किया करते थे। राजाश्रयी होने के कारण उनके रचनाओं में काव्य का वह सहज प्रभाव और चित्रण देखने को नहीं मिलता है जो उसके पहले और बाद के कालों में दिखाई देता है। राजाश्रयी कवियों का एक मात्र लक्ष्य आश्रयदाताओं का मनोरंजन करना रहा है। जिसे हम उनके काव्यगत प्रवृिति के आधार पर देखते हैं। रीतिकालीन काव्य की उल्लेखनीय प्रवृत्ति 'रस' की है। रीतिकाल में सामंतवाद का बोलबाला था और उनके बीच रसिकता एक सहज बात थी। इसकी चर्चा सभी रीतिकालीन कवियों ने की है। बिहारी के शब्दों में 'रसिक' और 'भ्रमर की तुलना अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से बहुधा की गयी है। रसिक की गतिविधि की ओर संकेत देनेवाला दोहा पठनीय है–

फिरत जू अटकत कटनि बिन रसिक, सुसर न खियाल।

अनत–अनत नित–नित हितन कत सकुचावत लाल।।

दरबारी मनोवृत्ति के कारण ही इस काल के रीतिबद्ध कवि राजप्रशंसा के पद्य भी लिखते थे। इससे रीतिकालीन कवि के विचार पर प्रकाश पड़ता है। वे दरबारी सभ्यता के जीवन में बंधे हुए थे। रसालंकार नायिका–भेदादि से लक्षणग्रन्थों के उदाहरणों में राजप्रशंसा की प्रधानता दृष्टिगत होती है। राजाश्रय से यह लाभ अवश्य हुआ कि काव्यकला को संरक्षण मिला और कवियों को राजकीय–जीवन निकट से देखने के कारण 'सजीव–शृंगार' का चित्र चित्रित करने में कठिनाई न हुई। रीतिकालीन काव्य में शृंगार की प्रधानता रही तथा कवि चाहे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध या रीतिमुक्त परिवेश का रहा हो परन्तु उसके काव्य में शृंगार रस की सुगन्ध रही है। भूषण जैसे कवि ही अपवाद हैं कि वे बीररस के प्रति अधिक सजगता से आकृष्ट रहे हैं। 'रीति–निरूपण' रीतिकालीन कवियों की प्रधान प्रवृत्ति है अर्थात् लक्षण ग्रन्थों की रचना करना। इस प्रवृत्ति को प्रधान मानकर ही आचार्य शुक्ल ने इस काल का नाम रीतिकाल रखा है। विभिन्न काव्यांगों के लक्षण एवं उदाहरण देते हुए अनेक कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की। केशव की 'कविप्रिया', चिन्तामणि की 'कविकुल कल्पतरु', 'शृंगार मंजरी', मतिराम की 'ललित ललाम' गोप की 'रामचन्द्राभरण', भूषण की 'शिवराजभूषण', 'देव' की 'रस विलास', आदि ऐसी ही रीति निरूपक रचनाएं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन रीति ग्रन्थकारों को आचार्य न मानकर कवि ही माना है। उनके अनुसार, "हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों की परिपाटी पर रचना करने वाले जो सैकड़ों कवि हुए, वे आचार्य कोटि में नहीं आ सकते।"

रीतिकालीन कवियों के काव्य का केन्द्र बिन्दु है श्रृंगार। इस काव्य में नखशिख–चित्रण के द्वारा नायिका के रूप–सौन्दर्य की झांकी प्रस्तुत की गई है तथा राधा–कृष्ण की प्रेम लीलाओं का विविध प्रकार से चित्रण किया गया है, जिसमें भक्ति भावना का लेश भी नहीं है। नायिका–भेद के अन्तर्गत भी श्रृंगार ही प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। डॉ. नगेन्द्र ने रीतिकालीन काव्य में श्रृंगार की प्रधानता को लक्ष्य कर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा है–

'सांचा चाहे जैसा भी रहा हो, इसमें ढली श्रृंगारिकता ही।'

श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का चित्रण रीतिकालीन काव्य में किया गया है। संयोग चित्रण में कहीं–कहीं अश्लीलता का समावेश भी हो गया है। वियोग वर्णन के अन्तर्गत रीतिमुक्त स्वच्छन्द कवियों ने हृदय की आकुलता एवं विफलता का अनुभूतिपरक चित्रण किया है, जबकि बिहारी ने विरहजन्य कृशता का वर्णन किया है:

इत आवति चलि जात उत चली छः सातक हाथ।

चढ़ी हिंडोरे सी रहै लगी उसांसन साथ।।

दरबारी काव्य होने के कारण रीतिकालीन काव्य में अलंकरण की प्रधानता है। वस्तुतः ये कवि 'केशव' की इस उक्ति के पक्षधर थे।

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुरवन सरस सुवृत।

भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त।।

अलंकारों के बिना 'कविता सुन्दरी' सुशोभित नहीं होती, भले ही वह अन्य गुणों से युक्त क्यों न हो। अलंकार के पीछे दौड़ने के कारण अधिकांश

स्थलों पर केशव का काव्य विकृत हो गया है, बिहारी की उत्प्रेक्षायें बड़ी सटीक बन पड़ी हैः

सोहत ओढ़ैं पीत पीट स्याम सलोने गात।

मनौं नीलमनि सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात।।

रीतिकालीन कवि के लिए अलंकारशास्त्र की जानकारी एक अपरिहार्य आवश्यकता थी। इस ज्ञान के बिना उसे सम्मान मिलना कठिन था, परिणामतः इस काल में अलंकारिता खूब फली–फूली। अलंकार जो कविता का 'साधन' है, इस काल में आकर 'साध्य' बन गया।

रीतिकाल के अधिकांश कवि विभिन्न राजदरबारों के आश्रय में रहते थे। बिहारी, देव, भूषण, सूदन, केशव, मतिराम, आदि सभी प्रसिद्ध कवि राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे। अतः यह स्वाभाविक था कि वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य रचना करते। राजनीतिक दांव–पेंच एवं जोड़–तोड़ में लगे रहने वाले इन दरबारी कवियों के काव्य में स्वतः स्फूर्त काव्य रचना की वह प्रवृत्ति दिखाई नहीं पड़ती जो भक्तिकाल में थी।

रीतिकालीन काव्य में बहुज्ञता का प्रदर्शन करने के साथ–साथ चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। बिहारी जैसे कवियों के काव्य में ज्योतिष, आयुर्वेद, पुराण, गणित, नीतिशास्त्र काव्यशास्त्र, ज्योतिष की अनेक उक्तियों का समावेश कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि ज्योतिषशास्त्र में उनकी गहरी पैठ है। उदाहरण के लिए निम्न दोहे को लिया जा सकता है, जिसमें राजयोग प्रकरण का उल्लेख हैः

यह विनसत नग राखि कै क्यों न सुजस जग लेहु।

जरी विषमज्वर ज्याइए आइ सुदरसन देहु।।

रीतिकालीन कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रायः यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे अलंकारों का सहारा लिया है। इनके काव्य में शब्दों की कलाकारी एवं कला की रमणीयता पर अधिक ध्यान दिया गया है।

रीतिकाव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य तो श्रृंगार ही है, तथापि उसमें भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों सूक्तियाँ यत्र–तत्र उपलब्ध हो जाती है। अधिकांश नीति कवियों ने अपने जीवन के संध्याकाल में भक्ति एवं वैराग्य से ओतप्रोत रचनाएँ लिखी है, ऐसा शायद उन्होंने अपने पाप बोध के कारण किया है। रीतिकालीन कवियों ने श्रीराधा–कृष्ण के नाम को आधार बनाकर जो रचना प्रस्तुत की है उनमें भक्ति–भावना प्रमुख न होकर श्रृंगार–भावना ही प्रमुख है। उन्होंने अपनी भक्ति भावना के सम्बन्ध में स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

रीझिहैं सुकवि जो तौ जानौ कविताई

न तो राधिका–कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

रीतिकालीन काव्य का केन्द्र 'नारी चित्रण' का रहा है। नायिका के नख–शिख चित्रण में उन्होंने अधिक रूचि दिखाई है। नारी के ऐन्द्रिक बाह्य रूप से निरूपण में ही उनकी वृति अधिक रमी है, उसके आन्तरिक गुणों का चित्रण उन्होंने नहीं किया। नारी के विपिन अंगों का स्थल एवं मांसल चित्र अंकित करते हुए उन्होंने काव्य रसिकों उसके मनमोहन स्वरूप से ही परिचित कराया। देव कवि की यह उक्ति की धारणा समर्थन में उद्धृत की जा सकती है–

कौन गनै पु नगर कामिनी एकै रीति।

देखत हरै विवेक कौ चित हरै कर प्रीति।।

रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने नारी के प्रति इसी दृष्टिकोण पर ध्यान देते हुए उसके रूप के प्रति तीव्र आसक्ति का परिचय दिया है।

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति चित्रण प्रायः उद्दीपन आलंकारिक रूप में किया है। नायक–नायिका की मानसिक दशा के अनुकूल प्रकृति की संयोजक में सुखद एवं दुखद रूप में चित्रण की गई है। कवियों को इतना अवकाश ही कहा था, कि वे प्रकृति के मनोहर स्वरूप में रीझकर काव्य रचना करते? सेनापति जैसे एक दो कवियों ने ही प्रकृति का मनोरम चित्र अंकित किए है अन्यथा बिहारी, देव, मतिराम जैसे कवियों के षड्ऋतु वर्णन में उद्दीपन रूप में ही प्रकृति के मनोहर रूप दिखते हैं। ।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी के काव्य में भी प्रायः सभी ऋतु का वर्णन उपलब्ध होता है। निम्न दोहे में वसन्ती मकरन्द से तृप्त भौरों का अत्यन्त मनोरम चित्र अंकित किया गया है।

छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गन्ध।

ठौरे–ठौर झौंरत झपत भौंर–झौंर मधु अन्ध।।

सेनापति को ऋतु वर्णन में अप्रतिम सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने सभी ऋतु का सुंदर वर्णन किया है। वर्षा काल का एक चित्र द्रष्टव्य है–

सेनापति उनए नए जलद सावन के,

चारिहू दिसान घुमत भरे तोय कै।

सोभा सरसाने न बखाने जाते कैहूं भांति,

आने हैं पहार मानो काजर के ढोय कै।।

रीतिकाल के एक अन्य कवि पद्माकर का वसन्त वर्णन भी अत्यधिक आकर्षक बन पड़ा है।

'द्वार में दिसान में दुनी में देस–देसन में,

देखी दीप दीपन में दीपत दिगन्त है।

बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में,

बनन में, बागन में बगर्‌यौ वसन्त है।

रीतिकाल में केवल ब्रज क्षेत्र के कवियों ने ही नहीं अपितु सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र के कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। बुन्देली क्षेत्र में केशव ने, पंजाब में गुरू गोविन्द सिंह ने तथा राजथानी क्षेत्र में बिहारी ने, मराठी क्षेत्र में भूषण ने, ब्रजभाषा में ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की।

रीतिमुक्त कवियों की भाषा में लाक्षणिकता का सौन्दर्य भी विद्यमान है। और व्यंजना का सहारा लेते हुए घनानंद जैसे कवि ने काव्य भाषा शक्ति का परिचय दिया है। आचार्य शुक्ल ने घनानंद की काव्य भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है– "घनानन्द जी उन बिरले कवियों में हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते है। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप–रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक एवं व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।"

रीतिकाल के कवियों ने कवित्त, सवैया, दोहे अधिक लिखे हैं जो उनके वर्ण्य विषय के लिए पूर्णतः उपयुक्त छन्द थे। इन कवियों ने एक ओर तो

लक्षण ग्रन्थ लिखकर हिन्दी काव्य–रसिकों के काव्यशास्त्र से परिचित कराया तो दूसरी ओर शृंगार प्रधान रचनाएँ लिखकर काव्य में मार्धुय का समावेश किया 'बिहारी सतसई' रीतिकाल की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जा सकती है।

रीतिकाल में यद्यपि कुछ प्रबन्ध काव्य लिखे गऐ हैं। तथापि रीति कवियों ने मुक्तक काव्य की रचना कर अपनी रूचि प्रदर्शित की है। जब राजदरबारों में कवि दंगलों का आयोजन किया जाता हो और दूसरे से बाजी मार लेने की प्रतिस्पर्धा चल रही हो तब प्रबन्ध रचना की प्रवृत्ति पनप ही नहीं सकती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है– "यदि प्रबन्ध विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता इसी से वह सभा–समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है।" आलंकारिता, चमत्कारप्रियता एवं बहुज्ञता का प्रदर्शन करने हेतु भी मुक्तक रचना की प्रवृत्ति का विकास रीतिकाल में हुआ।

2.8 सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्ययुगीन साहित्य का पूर्वाद्ध भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। इसकी विशेषताओं के आलोक में इसे स्वर्ण युग की संज्ञा दी गई है। हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक एवं इतिहासकार रामचंद्र शुक्ल के दृष्टि से या कहा जाय की महत्वपूर्ण विद्वानों के अनुसार हिन्दी काव्य का श्रेष्ठम अंश इसी काल में उपलब्ध होता है, जो निर्गुण और सगुण धाराओं में प्रवाहित होता है। यह काव्य गुणवत्ता और परिणाम दोनों दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध है। जिसे हम काव्य विधाओं के आधार पर अन्य कालों से अधिक समृद्ध पाते हैं।

भक्तिकालीन संतकवि भारतीय निर्गुण भावना के समीप होते हुए अद्वैत दर्शन के प्रतिपादक थे। सामाजिक स्तर पर इन संतों ने पाखण्ड एवं अंधविश्वासों का पूरी दृढता के साथ खंण्डन किया। जिसके कारण इन संतों को समाज सुधारक के रूप में भी देखा जाना चाहिए। संत कवियों ने धर्म,

दर्शन, भक्ति तथा चरित्र–निमाण का संदेश दिया था। ये संकीर्णता के विरोधी थे तथा दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत दृष्टि से एकेश्वरवाद का समर्थन किया था। निर्गुण संत कवियों के साथ ही एक दूसरी काव्य–धारा भी प्रवाहित थी जिसे 'प्रेमाख्यानक काव्य' के नाम से जाना जाता है। सूफी प्रेमाख्यानक परंपरा के कवि निर्गुणोंपासक थे। ईश्वर विषयक वर्णनों में प्रतीकात्मक शैली को स्वीकार करने के कारण सगुण का अभास भी उनके काव्य में मिलता है। इस सम्प्रदाय में आत्मा सदैव परमात्मा की प्राप्ति के लिए व्याकुल रहती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूफी कवि जायसी के 'पद्मावत' की समीक्षा करते हुए उसके प्रेम और मानवतावादी स्वभाव को स्पष्ट किया है : "अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए सामान्य जीवन–दशाओं को सामने रखा, जिनका मनुष्य मात्र के ह्रदय पर एक सामान्य प्रभाव दिखाई पडता है।" शुक्ल जी ने सूफी कवि जायसी के साहित्य का मूल्यांकन कर उन्हें बडा कवि सिद्ध किया है। जिसके कारण सूफी कव्य–धारा भक्तिकाल में विशेष स्थान रखता है।

सगुण भक्ति का अर्थ है साकार रूप में ईश्वर की भक्ति। जिसका अध्ययन रामकाव्य तथा कृष्णकाव्य के रूप में किया जाता है। राम और कृष्ण के चरित्र के महानता के कारण ही इसे भक्तिकाल का श्रेष्ठतम काव्य कहा जाता है। सगुण काव्यधारा पूरे मध्यकाल का प्राणतत्व है जिसमें मनुष्य जीवन के आचार–विचार, नीति–धर्म तथा संस्कार के आर्दश स्थापित किए गए हैं। परिवार की मर्यादा, संबंधों की मर्यादा सगुण रूप में दिखया गया है जो राम और कृष्ण के जीवन पर आधारित है।

रीतिकाल के कवियों का श्रृंगार–वर्णन तो सर्वप्रिय हुआ है परन्तु इस युग के कवियों की भक्ति–भावना की वृत्ति भी प्रबल रही है। निष्पक्ष रूप से कहा जाए तो श्रृंगार और भोग तथा भक्ति और योग के कवि भी रीतिकाल में दृष्टिगत होते हैं। मतिराम, बिहारी और अमीरदास की सतसइयों में श्रृंगार के

साथ–साथ भक्ति का वर्णन भी किया गया है। भक्ति काव्य में श्रीकृष्ण–राधा विषयक चित्र अधिक हैं। तथापि शृंगार और भक्ति का योग तो अद्‌भुत है। नीतिकारों के नीति के पद भी लिखे हैं। लोकज्ञान, लोकव्यवहार, वैयक्तिक जीवन–अनुभव, राजनीतिक दांव–पेंच आदि का चित्रण भी तब के कवियों ने किया है। अतः शृंगार और भक्ति का यह काव्य प्रवृत्तिपरक ही है। शृंगार एक पक्षीय प्रवृत्ति है और शृंगार के साथ ही भक्ति–शृंगार को परिष्कृत करने वाली भिन्न प्रकृति है। भक्तिकालीन काव्यकार इस क्षेत्र में रीतिकालीन कवियों से आगे हैं। यह भी सत्य है कि रीतिकालीन कवि भक्तिभाव का चित्रण करके भी आध्यात्मिकता की ओर नहीं झुका था। वह ऐहिक विषयों पर चित्रण करके भक्त बनकर रहना चाहता था। भक्ति क्षेत्र में आडम्बर भी था। "जप माला छापा तिलक" एवं "अपने अपने मति लगै, वादि मचावत सोर" जैसी उक्तियां उस काल के दिखावटी भक्तों की पोल खोल देती हैं।

रीतिसिद्ध कवियों ने रीतिबद्ध कवियों से आगे बढ़कर मनोभावों का सूक्ष्म वर्णन किया। लक्षणों की अन्विति स्वतः प्रमाणित होती गयी। दोहा पढ़ते ही लक्षण समन्वित होकर नायिका विशेष का बिम्ब उभर आता है। रीतिसिद्ध कवि युग जीवन के वर्णन में अधिक सफल रहे हैं। गली, बाजार, उपवन, बावड़ी, घर, परिवार, सरसी आदि के शृंगार–क्रीड़ाओं से आबद्ध चित्रण तद्‌युगीन कवियों ने किए हैं और रीतिमुक्त कवियों ने रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध से विद्रोह किया था। यह काव्य–पीढ़ियों का विकट विद्रोह था, जिसकी सूचना रीतिमुक्त कवि ठाकुर के इस पद्य में दृष्टिगत होती है।

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,

सीखि लीनो जस औ प्रताप की कहानो है।

सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामनि,

सीखि लीनो मेरू औ कुबेर गिरी आनो है।

ठाकुर कहत या की बड़ी है कठिन बात,

या को नहीं भूलि कहूं बांधियत बनो है।

ढेल से बनाया आय मेलत सभा के बीच,

लोगन कवित्त कीनो खेल करि जानो है।

काव्य–क्षेत्र में पीढ़ियों का संघर्ष वर्षों से होता आया है। तब भी पुरानी पीढ़ियों से विद्रोह की घोषणा ही की गयी थी। रीतिकाल के ठाकुर ने भी यही किया। इसलिए रीतिकालीन रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कविता राजदरबारों की चकाचौंध छोड़कर जन–जीवन के खुले आंगन में आ गयी और रीतिमुक्त कवि वैयक्तिक प्रेम का काव्य लिखने लगे। कविता जन जीवन से पुनः जुड़ गयी और मेलों, उत्सवों का वर्णन पुनः काव्य में होने लगा और रीतिकाल के काव्य में जनजीवन पुनः साकार हो उठा। रीतिकाव्य के इतर साहित्य भी रीतिकाल में रचा गया। सूफी–काव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, हास्य–व्यंग्य एवं कोश आदि का लेखन नीति–काव्य के अतिरिक्त इस काल में हुआ। इसे नैतिक प्रधान या उपदेश प्रधान काव्य कहा जा सकता है।

1.9 मुख्य शब्दावली

वैयक्तिक– व्यक्ति विशेष से संबंधित

वैष्णवेत्तर– वैष्णव धर्म से अलग

सहिष्णुता– सहनशीलता, क्षमाशीलता

प्रवृत्ति– स्वभाव, क्रिया व्यपार

अलंकृत– विभूषित, सजाया, संवारा

राजाश्रय– राजा का आश्रय

आश्रयदाता– शरण देने वाला

उत्कृष्ट– श्रेष्ट, उच्च कोटि का

आलोक– प्रकाश, उज्जाला

समन्वय– तालमेल बिठाना

अद्वैतवाद– शंकराचार्य द्वारा दिया गया भारतीय दर्शन का सिद्धान्त

पाखण्ड– ढोंग करना, दिखावा करना

आडम्बर– आवरण

ब्रम्हज्ञान– ईश्वर के वारे में ज्ञान, अलौकिक सत्ता का ज्ञान

1.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1 भक्तिकाल के काल–विभाजन और नामकरण पर आपकी राय कैसी हो सकती है? इस पर विचार करें।

2 भक्तिकालीन परिस्थितियों की रीतिकालीन परिस्थितियों से तुलना के लिए अपने मित्रों से वार्त्ता करें।

3 भक्तिकाल की प्रवृत्तियों को जॉचने के लिए इस काल के महत्वपूर्ण कवियों का अध्ययन करें।

4 रीतिकाल के नामकरण और काल–विभाजन के लिए विभिन्न विद्वानों की राय और विचार को जॉचने के लिए अपने मित्रों से चर्चा करें।

5 रीतिकाल की परिस्थितियां भक्तिकाल से कैसे भिन्न थीं? इस पर चर्चा करें।

6 रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियां उस युग के साहित्य को कैसे प्रभावित करती है? इसकी पडताल करें।

7 रीतिकाल का काल महत्व हिन्दी साहित्य के इतिहास में कैसे स्थापित हो सकता है? इस पर विचार करें।

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

1 भक्तिकाल का काल–विभाजन और नामकरण पर रामचंद्र शुक्ल के विचार का मूल्यांकन करें।

2 भक्तिकाल में कौन–कौन सी परिस्थितियां उस युग को प्रभावित करती हैं। विस्तार से समझाए।

3 निर्गुण काव्य–धारा के प्रवृत्तियों का उल्लेख करें।

4 सगुण काव्य–धारा भक्तिकाल की उत्कृष्ट उपलब्धि है। इस पर एक निबंध लिखें।

5 'रीतिकाल के नामकरण में शुक्ल जी द्वारा दिया गया नाम तर्क संगत है।' इसकी समीक्षा करें।

6 रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।

7 'भक्तिकाल की कविता का शिल्प–पक्ष रीतिकाल की कविता के शिल्प–पक्ष से किस प्रकार भिन्न है?' इसका मूल्यांकन कीजिए।

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं–

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

2. हिंदी साहित्य और संवदेना का विकास– रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नई दिल्ली

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास– सं. डॉ. नगेन्द्र मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

4. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास– डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

5. हिन्दी साहित्य की भूमिका– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

6. हिन्दी साहित्य का अतीत– आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

7. परंपरा का मूल्यांकन– डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

1.3 सारांश

हिंदी साहित्य के इतिहास की इस इकाई (1.) में आपने यह जाना कि हिंदी साहित्य का आरंभ कहां से शुरू हुआ और अलग-अलग विद्वानों ने इसका वर्गीकरण किस प्रकार किया है। हिंदी साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण के पीछे क्या-क्या कारण रहे और इसका आधार के तौर पर यह जाना कि किसी भी साहित्य का कालविभाजन करता के आधार पर, प्रवृति के आधार पर विकासवादिता के आधार पर तो हो सकता है पर उसमें तर्क, तथ्य और वैज्ञानिकता की मौजूदगी जरूरी है। काल विभाजन की परंपरा और विभिन्न कालों में अलग-अलग विद्वानों ने उसके नाम के पीछे क्या मत रखा और उसका सर्वमान्य काल विभाजन और नामकरण कौन सा है यह भी स्पष्ट किया गया है ।अंत में आदिकाल की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों पर भी विस्तार पूर्वक बातें की गई है।

1.4 मुख्य शब्दावली

आविर्भाव : प्रकट होना।
पूर्वाग्रह। : पहले से निश्चित किया गया मत या विचार
सम्यक। : समुदाय, समूह।
स्वायत्तता : स्व-शासन।
निरूपण : विवेचना करना।
परिवर्द्धित : जिसे बढ़ाया गया हो(जैसे-पुस्तक का नवीन संस्करण परिवर्द्धित हो गया है)
व्यवहृत : व्यवहार में लाया गया।
परिनिष्ठित : पूर्णतया कुशल।
विश्रृंखलता : मुक्त रूप से

1.5 अपनी प्रगति जांचिए' - (प्रश्नोतर)

1. नाथ एवं सिद्ध साहित्य को किसने साम्प्रदायिक कहा है?
(a) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
(b) आचार्य रामचंद्र शुक्ल
(c) मिश्रबन्धु
(d) गणपति चन्द्र गुप्त
उ. (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

2. हिंदी साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन का पहला प्रयास किसने किया?
(a) गार्सा द तासी
(b) शिवसिंह सेंगर
(c) जार्ज ग्रियर्सन
(d) आचार्य रामचंद्र शुक्ल

उ.(जार्ज ग्रियर्सन)

3. आदिकाल के लिए 'चारणकाल' नाम किस विद्वान ने सुझाया?
(a) मिश्रबन्धु
(b) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
(c) डॉ. रामकुमार वर्मा
(d) राहुल सांकृत्यायन
उ.(डॉ. रामकुमार वर्मा)

4. अपभ्रंश से प्रभावित हिंदी में लिखे जाने वाली वीरगाथात्मक काव्य को कहा जाता है -
(a) सिद्ध साहित्य
(b) नाथ साहित्य
(c) जैन साहित्य
(d) रासो साहित्य
उ.(रासो साहित्य)

5. सिद्धों की कुल संख्या कितनी है?
(a) 32
(b) 84
(c) 44
(d) 74
उ.(84)

6. रीतिकाल को अलंकृत काल किसने कहा ?
(a) रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
(b) मिश्रबन्धु
(c) हजारी प्रसाद द्विवेदी
(d) जार्ज ग्रियर्सन
उ.(मिश्रबन्धु)

(7.) भक्तिकाल को ईसाइयत की देन किसने कहा?
(a) गजानन माधव मुक्तिबोध
(b) डॉ.रामविलास शर्मा
(c) ग्रियर्सन
(d) रामकुमार वर्मा
उ.(ग्रियर्सन)

1.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. आदिकाल की सर्वमान्य समय सीमा पर प्रकाश डालिये।

2. काल-विभाजन और नामकरण की परंपरा से क्या तात्पर्य है ?
3. आदिकाल और रीतिकाल का नामकरण विवादस्पद माना गया है । कैसे ?
4. आधुनिक काल से क्या समझते हैं?

दीर्घ - उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण की समस्या पर विचार कीजिये।
2. आदिकाल की परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
3. आदिकालीन साहित्यिक प्रवृतियों को स्पष्ट कीजिए।

1.7 आप इसे भी पढ़ सकते हैं -

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचर्य रामचंद्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास - विश्वनाथ त्रिपाठी।
3. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई : 2 कविता -II

2.0 मुहम्मद जायसी : सामान्य परिचय

कभी भारतेन्दु हरि''चन्द्र ने कहा था– 'इन मुसलमान हरिजनन पै केतिक हिन्दू वारिए।' अर्थात् इन मुसलमान भक्तों पर कितने ही हिन्दुओं को न्योछावर किया जा सकता है। मलिक मुहम्मद जायसी ऐसे ही 'मुसलमान हरिजन' हैं, जिन्होंने मुसलमान होते हुए भी हिन्दू राजा रत्नसेन और पद्मावती की प्रेमकहानी को लेकर न सिर्फ एक बड़ा काव्य रचा, अपितु उसमें पूरी सहृदयता के साथ हिन्दू संस्कृति का चित्रण भी किया। वर्तमान उत्तर प्रदे''ा के जायस नामक स्थान के रहने वाले जायसी तन से सुन्दर नहीं थे, परन्तु उनके मन की सुन्दरता ने उन्हें हिन्दी साहित्य में परम सम्मान का अधिकारी बना दिया है। उनका रचा 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य की अनमोल धरोहर है और जायसी हिन्दी साहित्य के इतिहास का कभी भी न भुलाया जा सकने वाला नाम हैं।

.2.1 पद्मावत का काव्य–सौष्ठव

हिंदी साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग कहे जाने वाले भक्तिकाल के जिन चार प्रसिद्ध कवियों की सर्वाधिक चर्चा होती है मलिक मोहम्मद जायसी उनमें से एक हैं। जायसी आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा बताई गई भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा की प्रेममार्गी शाखा के सर्वप्रमुख कवि हैं। भक्तिकालीन हिंदी कविता की इस शाखा को सूफी काव्यधारा के नाम से भी जाना जाता है। मुल्ला दाऊद, कुतवन, मंझन, उस्मान, शेख नबी, कासिमशाह, नूर मोहम्मद आदि इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं तथा 'चंदायन', 'मृगावती', 'मधुमालती', 'चित्रावली', 'ज्ञानदीप', 'हंस जवाहिर' तथा 'इंद्रावती' आदि प्रसिद्ध काव्य–ग्रन्थ। इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ मलिक मोहम्मद जायसी का पद्मावत है। 'पद्मावत' के अतिरिक्त 'अखरावट', 'आखिरी कलाम' 'चित्ररेखा', 'मसलानामा', 'कहरानामा', 'महरीवाईसी' आदि सहित जायसी ने अनेक काव्य कृतियों की रचना की है; पर अपने जिस काव्य–ग्रंथ के कारण जायसी ने हिंदी साहित्य में अमर स्थान बनाया है– वह 'पद्मावत' ही है। सन् 1540 ई. के आसपास रचित इस महाकाव्य की आलोचकों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। 'पद्मावत' की काव्यगत विशेषताएं इस प्रकार देखी जा सकती हैं–

प्रेम की पीर का काव्य

पद्मावत प्रबंधकाव्य है जो एक प्रेम कथा पर आधारित है। इस काव्य में प्रेम की पीड़ा व्यक्त हुई है। चित्तौड़ का राजा रतनसेन पद्मावती के रूप–सौंदर्य की चर्चा सुनकर उसके प्रेम में पड़ जाता है और सिंहलद्वीप जाकर अनेकानेक कष्ट सहते हुए अंततः उसे प्राप्त करने में सफल होता है। इधर उसकी पत्नी पहली रानी नागमती उसके वियोग में दुखी होती है। उसकी पीड़ा का बड़ा मार्मिक और शास्त्रीय ढंग से चित्रण नागमती वियोग खंड में हुआ है। रत्नसेन के पद्मावती को साथ लेकर चित्तौड़ आने के बाद भी संयोग के पल बहुत सीमित होते हैं। दिल्ली का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी इस प्रेम कहानी में खलनायक बनकर उपस्थित होता है। पहले रत्नसेन बंदी होता है, फिर अलाउद्दीन की कैद से छूटने के पश्चात् देवपाल के साथ युद्ध करते हुए मारा जाता है और दोनों रानियां उसकी चिता के साथ जलकर सती हो जाती हैं। इस प्रकार यह एक ऐसा काव्य है जिसमें पीड़ा–ही–पीड़ा है। इस प्रेमकथा को कहते हुए कवि कितना मर्माहत हुआ है, यह इसी से समझा जा सकता है कि वह कहता है– मैंने इस कथा को अपने रक्त की लेई बनाकर प्रस्तुत किया है।

लौकिक के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना

'पद्मावत' एक प्रेम कथा अवश्य है, पर इसमें व्यक्त प्रेम का लौकिक आयाम भर नहीं है। यह कोई साधारण प्रेम कथा नहीं है, अपितु रत्नसेन–पद्मावती के अलौकिक प्रेम के माध्यम से जीव और ब्रह्म के अलौकिक प्रेम तक इसका प्रसार–विस्तार है। इसीलिए जायसी कहते हैं– 'प्रेम कथा यहि भांति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझे पारहु।' सूफी सिद्धांतों के अनुसार जायसी वास्तव में रत्नसेन–पद्मावती की प्रेम कहानी के माध्यम से यह संकेत करना चाहते हैं कि जैसे कोई सांसारिक प्रेमी अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए किसी भी हद से गुजर जाता है और उसके लिए अपनी जान की बाजी तक लगाने को तैयार हो जाता है, इसी प्रकार यदि व्यक्ति का प्रेम ईश्वर से जुड़ जाए और तदनुसार समर्पण, लगन, एकनिष्ठा बलिदानी भावना उसके भीतर पैदा हो जाए तो वह हर कठिनाई पर विजय प्राप्त कर उसे पा सकता है। पद्मावत में लौकिक प्रेम कहानी के बीच–बीच में ही अनेक स्थलों पर आध्यात्मिक प्रेम के संकेत भी कवि ने किए हैं। इस संदर्भ में उसने जो प्रतीक–व्यवस्था की है उसके अनुसार रत्नसेन साधक है, पद्मावती ब्रह्म है, तोता गुरु है, नागमती दुनिया–धंधा है, अलाउद्दीन खिलजी माया है और राघव चेतन शैतान है।

रस–निरूपण

पद्मावत महाकाव्य की कोटि का प्रबंध–काव्य है। इसमें बड़े फलक पर एक कथा उठाई गई है। अतः इसमें विभिन्न स्थितियों परिस्थितियों में पात्र भिन्न–भिन्न मनोदशाओं से जूझते हैं और अनेक तरह के प्रसंग आते हैं। इस कारण से इस में प्रायः सभी रसों का परिपाक देखा जा सकता है। परंतु, यदि हम अंगी रस की दृष्टि से देखें तो वह निश्चय ही शृंगार रस होगा। संयोग और वियोग की जिस मनोरमता और मार्मिकता के कारण शृंगार को रसराज कहा जाता है वह हमें जायसी के इस अद्भुत कथा–काव्य में देखने को मिलती है। पति रत्नसेन के वियोग में उसकी रानी नागमती तिल–तिल छीजती हुई कैसे मरण द''ा को पहुंच गई है और अपनी उस अवस्था का ज्ञान वह किस प्रकार से अपने पति रत्नसेन को भौंरे और कौए के माध्यम से कराना चाहती है, देखें यह दोहा– 'पिउ सो कहेउ संदेसड़ा हे भौंरा हे काग। सो धनि विरहिन जरि मुई तेहिक धुआं हम लाग।' 'पद्मावत' में शृंगार के बाद यदि कोई रस प्रमुखता हासिल करते हैं तो वे हैं वीर एवं करुण रस। इनके साथ ही शांत, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों की सुंदर अवतारणा इस काव्य में यथास्थान हुई है।

सूफी सिद्धांतों का निदर्शन

जायसी एक कवि थे और कवि के रूप में प्रसिद्धि पाने की अपनी चाहत को उन्होंने 'पद्मावत' में दबाया भी नहीं है। परन्तु, कवि होने के साथ–साथ वे एक सूफी संत भी थे, जिनका उद्देश्य अपने सिद्धांतों का प्रचार करना था। अतः कविता जैसे सरस माध्यम को अपनाकर उन्होंने 'पद्मावत' में सूफी सिद्धांतों को भी अभिव्यक्ति दी है। सबसे बड़ी बात तो यह कि भारतीय परंपरा में ईश्वर या ब्रह्म को पुरुष माना जाता है और जीवात्माओं को उसकी स्त्रियां। कबीर तक कहते हैं– 'कहै कबीर हम ब्याह चले हैं पुरुष एक अविनाशी।' जायसी ने अपने सिद्धांतों के अनुसार परमात्मा को स्त्री यानी पद्मावती का रूप दिया है और जीव को पुरुष या प्रेमी का।

लोक–तत्वों का निदर्शन

जायसी के पद्मावत की एक अन्य वि''ोषता उसमें समाहित लोक तत्वों के रूप में है। जायसी एक संत थे और इस नाते उनका लोक से बहुत करीबी रिश्ता था। इसीलिए पद्मावत में स्थान–स्थान पर ऐसे वर्णन विवरण मिलते हैं जहां पर पाठक रचनाकार के लोक–ज्ञान पर तो अभिभूत होता ही है लोक के प्रति उसके संवेदनात्मक जुड़ाव और प्रस्तुति को भी देखकर भी मुग्ध हो जाता है। उनके काव्य में नागमती है तो एक बड़ी राजरानी, पर जायसी जब उसके मुख से कहलाते हैं कि 'हौं बिनु नाह मंदिर को छावा', तो साधारण गृहणी की इस चिंता को ही व्यक्त कर रहे होते हैं जिससे उसका बार–बार पाला पड़ता है। इसी तरह से जब

मानसरोदक खंड में पद्मावती की सखियों द्वारा मायके से ससुराल जाने की चिंता व्यक्त कराते हैं तो स्त्री जीवन के प्रति उनके मन का सदा"ायी भाव और लोकजीवन में स्त्री की स्थिति छिपी नहीं रह जाती।

हिंदू धर्म एवं संस्कृति के प्रति सदा"ायी भाव

सूफी काव्यधारा के कवियों ने अपने काव्य में जिन कथाओं को आधार बनाया है, वे अधिकांशतः हिंदू राजा–रानियों से जुड़ी हैं। जायसी का 'पद्मावत' भी चित्तौड़ के हिंदू राजा रत्नसेन के जीवन की कथा से जुड़ा है। अतः इसमें हिंदू धर्म की बहुत सी मान्यताओं, परंपराओं एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण हुआ है। मलिक मुहम्मद जायसी के इस काव्य पद्मावत को पढ़ते समय कवि का हिंदू धर्म एवं संस्कृति के बारे में ज्ञान विस्मित तो करता ही है, इन सबके प्रति उदार भाव कवि के प्रति मन में सम्मान भी पैदा करता है। कवि ने यथोचित आदर और उदारता के साथ हिंदू देवी–देवताओं, पर्वोत्सवों, मान्यताओं, परंपराओं यहां तक कि नायक एवं अन्य योद्धाओं के वीर भाव तक को प्रस्तुत किया है।

प्रकृति–चित्रण

कविता का प्रकृति से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। कविगण अनेकशः अपने भावों को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहयोग लेते हैं। प्रकृति–चित्रण के अनेक रूपों में से आलंबन और उद्दीपन रूप अधिक प्रमुख हैं। महाकाव्यों में प्रकृति–चित्रण के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है। 'पद्मावत' में प्रकृति ने अनेक रूपों में स्थान पाया है, पर प्रमुखतः उसका आलम्बन और उद्दीपन रूप ही अधिक निखरकर सामने आया है। नागमती वियोग वर्णन के समय तो बारहो महीनों की बदलती हुई प्रकृति जैसे नागमती के मन में विरह–भावना को उद्दीप्त करती हुई प्रस्तुत होती है, वह देखते ही बनता है। कहीं–कहीं तो यह वर्णन अतिरंजना की स्थिति तक पहुंच जाते हैं, जैसे नागमती जिस भी पक्षी और वृक्ष के पास जाकर अपना विरह–निवेदन करती है, वह पक्षी तो जल ही जाता है वृक्ष भी पत्रविहीन हो जाता है– 'जेहि पंछी के नियर हुइ कहै विरह की बात। सोई पंछी जाय जरि तरिवर होय निपात।' पद्मावत में आलंबन रूप में भी प्रकृति–चित्रण के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये देखें–

'बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाखा। करहिं हुलास देखि कै साखा।।

भोर होत बोलहिं चुहचुही। बोलहिं पाडुक एके तुही।।'

इसके साथ ही 'पद्मावत' में अलंकारिक रूप में, पृष्ठभूमि–निर्माण के रूप में, मानवीकृत रूप में तथा अन्य अनेक रूपों में भी प्रकृति–चित्रण देखने को मिलता है।

काव्य–रूप

'पद्मावत' एक प्रबंध–काव्य है जो भारतीय महाकाव्य के काफी निकट है, यद्यपि इसमें मसनबी काव्य की भी अनेक विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इसमें महाकाव्य की तरह अध्यायों का सर्गों के रूप में विभाजन न करके खंडों के रूप में किया गया है और कुल 57 खंड हैं। स्पष्टतः एक वृहद् काव्य है जिसमें महाकाव्य की ही भांति जीवन का समग्रता में चित्रण हुआ है। नायक उच्च कुल में उत्पन्न एक राजा है, विभिन्न जीवन–स्थितियों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है, वस्तु–वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं, विभिन्न रसों का परिपाक है, श्रृंगार अंगी रस है इत्यादि। इसके साथ ही इसमें ई"ा–वंदना, शाहे–वक्त की प्रशंसा, आत्मपरिचय, गुरु–वंदना, यथास्थान सूफी सिद्धांतों का निदर्शन, भारतीय महाकाव्य परंपरा में वर्जित बातों का प्रकटीकरण, अंत दुखद होना इत्यादि मसनबी काव्य के तत्व भी देखने को मिलते हैं।

भाषा

'पद्मावत' अवधी भाषा में रचित है। इसी भाषा में आगे चलकर तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की। परंतु, 'रामचरितमानस' की साहित्यिक अवधी के मुकाबले पद्मावत में ठेठ अवधी का प्रयोग हुआ है। इस संदर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के विचार देखें– ''जायसी में तुलसी की तरह तत्सम शब्दावली की मिलावट– आचार्य शुक्ल के शब्दों में ''मंजु, अमंद'' आदि की चाशनी नहीं है पर संस्कृत शब्दावली से जायसी अपरिचित थे, ऐसा नहीं जान पड़ता। तद्भवों के अतिरिक्त बहुत बार 'गोपीतन्ह', 'पिरथिमी' जैसे अर्द्ध–तत्सम उन्होंने स्वयं गढ़े हैं, काव्यभाषा को मनोवांछित संस्कार देने के लिए। इस प्रकार की शब्दावली लोक बोली से ली गई नहीं जान पड़ती वरन् लोक–संस्कार के अनुसार स्वयं जायसी द्वारा रचित जान पड़ती है। कबीर ने भी ऐसे शब्द बनाए थे संस्कृत के प्रति अवज्ञा प्रकट करने के लिए, जायसी के यहां ऐसी शब्दावली लोकानुराग प्रकट करती है। वहां लोकानुराग की दृष्टि प्रबल नहीं थी, यहां संस्कृत के प्रति अवज्ञा की नहीं ळें

छंद

'पद्मावत' में छंदों की विविधता देखने को नहीं मिलती है। यह दोहा और चौपाई छंदों को मिलाकर रचा गया है। 'रामचरितमानस' भी प्रमुखता दोहा–चौपाई छंदों में निबद्ध है, पर उसके साथ ही उसमें अन्य कई प्रकार के छंद भी बीच–बीच में आते हैं। परंतु, पद्मावत के साथ ऐसा नहीं है। उसमें दोहा–चौपाई को ही अपनाया गया है।

अलंकार

कविता का अलंकारों से बहुत घनिष्ठ संबंध है। किसी–न–किसी रूप में चाहे–अनचाहे या जाने–अनजाने वे कविता में आते ही हैं। 'पद्मावत' जैसे वृहद् काव्य में अनेक अलंकारों का निदर्शन हमें प्राप्त होता है। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही अच्छा प्रयोग हमें पद्मावत में देखने को मिलता है। यहां तक कि मानवीकरण जैसे आधुनिक और पश्चिम की देन समझे जाने वाले अलंकार का प्रयोग हमें अब से लगभग 400 वर्ष पुराने इस काव्य–ग्रंथ में मिल जाता है, यथा– 'सरवर रूप विमोहा हिये हिलोरे लेइ। पांव छुए मकु पाबौं यहि मिस लहरैं लेइ।' विभिन्न अलंकारों के साथ ही पद्मावत में अन्योक्ति एवं समासोक्ति जैसे अलंकारों का भी बेहतर प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष

सूफी काव्य–परंपरा में जायसी से पूर्व और जायसी के पश्चात् अनेक काव्य लिखे गए और वे लोकप्रिय भी हुए। परंतु, काव्य–जगत् में जो लोकप्रियता और प्रतिष्ठा मलिक मोहम्मद जायसी के 'पद्मावत' को मिली है, वह किसी दूसरे को ना मिल सकी। अपने वृहत् कथा–संयोजन, उदात्त चित्रण, व्यापक वर्णन, लोकोपयुक्तता तथा विशिष्ट चरित्रों के प्रस्तुतीकरण आदि अनेक दृष्टियों से यह काव्य हिंदी साहित्य की एक अमूल्य निधि बन गया है जिसने हिंदी साहित्य के इतिहास में अपना सम्मानजनक और अमर स्थान बनाया है।

3.2.1 अपना ज्ञान परखिए

1. 'इन मुसलमान हरिजनन पै केतिक हिन्दू वारिए।' यह कथन किसका है?
2. पद्मावत' के अतिरिक्त सूफी काव्यधारा के अन्तर्गत आने वाली किन्हीं दो कृतियों के नाम लिखिए।
3. रत्नसेन की पहली रानी का नाम क्या था?
4. 'पद्मावत' में पद्मावती किसका प्रतीक है?
5. 'नागमती वियोग खण्ड' में प्रकृति प्रमुखतः किस रूप में चित्रित हुई है?
6. 'पद्मावत' में कितने खण्ड हैं?
7. 'पद्मावत' की रचना किस भाषा में हुई है?
8. 'पद्मावत' के अलावा भक्तिकाल के किस प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना दोहा–चौपाई छन्दों में हुई है?

2.2 पाठ्यां"ा और व्याख्या

उपसंहार खण्ड

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा।।

जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नैनन जल भेई।।

ओ मैं जानि कवित अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।।

कहाँ सो रतनसेन अब राजा। कहाँ सुआ अस बुधि उपराजा।।

कहाँ अलाउदीन सुलतानू ?। कहँ राघव जेहि कीन्ह बखानू ?।।

कहँ सुरूप पदमावति रानी। कोइ न रहा जग रही कहानी।।

धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै, पै मरै न बासू।।

केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।

जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सँवरै दुइ बोल।।

सन्दर्भ :

प्रस्तुत काव्यांश भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा की प्रेमाश्रयी शाखा के सर्वप्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित उनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'पद्मावत' के उपसंहार खंड से अवतरित है।

प्रसंग :

रत्नसेन के साथ उसकी दोनों पत्नियों पद्मावती और नागमती के सती हो जाने और उसके पश्चात् चित्तौड़ पर कब्ज़ा करने वाले अलाउद्दीन खिलजी के हाथ चिता की सिर्फ एक मुट्ठी राख आने के मार्मिक प्रसंग के साथ ही पद्मावत पूर्णता को प्राप्त होता है। पुनः उपसंहार खंड में जायसी इस प्रेमकथा के प्रतीकों को स्पष्ट करते हुए अंत में कहते हैं–

व्याख्या :

मुहम्मद कवि ने इस प्रेमकथा को रचकर सुनाया है। जिसने भी इसे सुना है उसने प्रेम की पीड़ा का अनुभव किया है। कारण यह कि इस प्रेम कहानी को मैंने अपने नेत्रों के जल (आंसुओं) से भिगोकर और अपने रक्त की लेई बनाकर गाढ़ी प्रीति को जोड़ा है। मैंने यह सोचकर अपने इस काव्य को रचा है कि शायद संसार में इसकी प्रतिष्ठा होगी और यह काव्य–जगत् में अपनी एक पहचान बनाने में सफल होगा। वैभवशाली चित्तौड़ का वीर राजा रतनसिंह अब कहां है? वह सुआ (तोता) भी तो आज नहीं है जिसने उसके भीतर बुद्धि (प्रेम करने की) उत्पन्न की। अलाउद्दीन खिलजी जैसा सुल्तान भी अब कहां बचा है और उस राघव

चेतन का भी अस्तित्व कहां है जिसने अलाउद्दीन के सामने पद्मावती के रूप सौंदर्य का बखान करके उसे चित्तौड़ पर आक्रमण के लिए उकसाया था। अप्रतिम रूप–सौंदर्य की स्वामिनी पद्मावती भी आज धरती पर नहीं बची है। आज इन सबमें से कोई नहीं बचा। बस, बची रह गई है तो इनकी कहानी। कहने का अभिप्राय यह कि धरती पर कोई सदा–सदा के लिए नहीं रहता, उसके अच्छे–बुरे कार्यो की चर्चा बची रह जाती है। इसलिए कवि कहता है कि वही धन्य है जिसने संसार में यश कमाया, अपनी कीर्ति फैलायी। फूल के मर जाने पर भी उसकी सुगंध नहीं मरती, ऐसे ही व्यक्ति के नहीं रह जाने पर भी उसका य''ा संसार में बचा रहता है। इस संसार में ना तो कोई य''ा को बेच पाया है और न कोई खरीद पाया है, यह तो अपने कामों से ही मिलता है। इसलिए इसी य''ा–कामना को लेकर मैंने यह कथा रची है कि मेरे न रहने पर भी जो कोई भी मेरी इस कथा–रचना को पढ़ेगा तो वह मुझे भी याद कर लेगा।

विशेष :

1. आचार्य मम्मट में काव्य के छह प्रयोजनों में से एक यश–प्राप्ति की कामना भी बताया है। कवि जायसी यहां उसी कामना को प्रकट कर रहे हैं।
2. भाषा–अवधी।
3. छंद : चौपाई–दोहा।
4. रस– शान्त।

मुहमद बिरिध बैस जो भई। जोबन हुत, जो अवस्था गई।।

बल जो गयउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन देइ नीरू।।

दसन गए कै पचा कपोला। बैन गए अनरुच दै बोला।।

बुधि जो गई देइ हिय बौराई। गरब गयउ तरहुँत सिर नाई।।

सरवन गए ऊँच जौ सुना। स्याही गई सीस भा धुना।।

भँवर गए केसहि देइ भूवा। जोबन गयउ जीत लेइ जूवा।।

जौ लहि जीवन जोबन साथा। पुनि सो मीच पराये हाथा।।

बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।

बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस ?।।

सन्दर्भ :

पूर्ववत्।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी अपनी वृद्धावस्था का वर्णन करते हुए वृद्ध–जीवन की दुर्दशा का विवेचन रोचक ढंग से कर रहे हैं।

व्याख्या :

मुहम्मद (मलिक मोहम्मद जायसी) पर जो अब वृद्धावस्था आई है तो उसके साथ ही योवनावस्था पीछे छूट गई है। अब इस अवस्था में शरीर का बल उसे क्षीण करके साथ छोड़ गया है। दृष्टि नेत्रों को नीर (आँसू) देकर चली गई है। दांत कपोलो (गालों) को पिचकाकर निकल गए हैं और वाणी अरुचिकर बोल देकर दूर हो गई है। बुद्धि के चले जाने से हृदय बावला हो गया है और मन का सारा गर्व सिर को नीचे झुकाकर चला गया है। कानों के अक्षम हो जाने से ऊंचा सुनाई पड़ता है और बालों की कालिमा चले जाने से सिर धुना जैसा हो गया है। बालों से भौंरा निकल जाने से वे काँस के फूल बनकर रह गए हैं अर्थात् के''ों की कालिमा चले जाने से वे श्वेतवर्ण (सफेद) हो गए हैं। यौवन मानो पूरे शरीर को जुए में जीतकर चला गया है। जब तक इस जीवन में यौवन का साथ है, तभी तक यह जीवन जीवन है। युवावस्था के बीत जाने पर तो पराश्रित हो जाने के कारण मरण ही मरण है। कवि अंत में बूढ़े जोगों के सिर हिलने लगने की कमजोरी के लिए एक रोचक कल्पना करता है कि बूढ़ा आदमी जो सिर हिलाता रहता है तो वह मानो इस रोष के कारण अपना सिर धुनता (पछताता) है कि उसे बुढ़ापे तक जीने का आशीर्वाद किसने दे दिया जिसके कारण आज उसे यह दिन देखना पड़ रहा है?

विशेष :

1. कवि ने वृद्धों की अवस्था का बड़ा रोचक किंतु यथार्थ वर्णन इन पंक्तियों में किया है। बुढ़ापे में शरीर कमजोर हो जाता है, कानों से ऊंचा सुनाई देता है, आंखों में धुंधलापन आ जाता है और उनसे पानी निकलता रहता है। मुंह से दांत निकल जाने से गाल पिचक जाते हैं। अपने पोपले मुँह से बड़े–बूढ़ों का बोलना किसी को अच्छा नहीं लगता है। शरीर के बलहीन, कांतिहीन हो जाने और केसों के सफेद पड़ जाने या गंजे हो जाने के कारण सारा आकर्षण जाता रहता है। गर्व चूर चूर हो जाता है, सिर झुक जाता है। इसलिए कवि कहता है कि जीवन का आनंद तो

यौवनकाल में ही है। बुढ़ापा तो मौत है, जिसमें मृत्यु की प्रतीक्षा करने के सिवाय व्यक्ति और किसी काम का नहीं रहता।

2. भाषा–अवधी।
3. छंद : चौपाई–दोहा।
4. रस– शान्त।

2.3 अपना ज्ञान परखिए के उत्तर

1. भारतेन्दु हरि''चन्द्र का। 2. मृगावती और मधुमालती। 3. नागमती। 4. ई''वर की। 5. उद्दीपन रूप में। 6. 57। 7. अवधी भाषा में। 8. 'रामचरितमानस' की।

2.4 तुलसीदास सामान्य परिचय

तुलसीदास का स्थान भारतीय और विश्व साहित्य के सबसे महान कवियों में है। तुलसीदास भक्तिकालीन हिंदी कविता की राम भक्ति धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनके जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इनका जन्म 1532 ई. राजापुर, बांदा, उत्तर प्रदेश माना जाता है। माता का नाम 'हुलसी देवी' तथा पिता का नाम 'आत्माराम दुबे'था ।बचपन से ही वेद, पुराण, उपनिषद आदि की शिक्षा मिली। तुलसीदास की पत्नी का नाम 'रत्नावली' था।

साहित्यिक रचनाएं

तुलसीदास की महत्वपूर्ण रचनाये निम्नलिखित हैं-

रामचरितमानस, दोहावली, गीतावली, विनय पत्रिका, कवितावली, हनुमान चालीसा, वैराग्य संदीपनी, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामललानहछू आदि हैं।

2.5 तुलसीदास पाठ्यांश

2.5 तुलसी की भक्ति भावना :

गोस्वामी तुलसीदास भक्ति काल के सगुण धारा के अंतर्गत आने वाले राम काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। उनकी सभी रचनाओं में भाव वैविध्य उनके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता रही है । जहां एक ओर उन्होंने नाथपंथीओं के प्रभाव से नष्ट होती हुई जनमानस की विश्वासमयी रागात्मिक वृत्तियों को राम भक्ति के माध्यम से पुनः सामान्य जनमानस में आशा का संचार किया वहीं दूसरी ओर राम कथा के विभिन्न प्रसंगों को उद्घाटित करके उसके माध्यम से पारिवारिक , सामाजिक ,राजनीतिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत करके विश्रृंखलित हिंदू समाज को एक नई दिशा प्रदान किया ।उनकी भक्ति भावना निर्गुण संतों की भक्ति भावना की तरह रहस्यमई ना होकर सीधी, सरल एवं सहजसाध्य है। तुलसी के राम कण - कण में व्याप्त हैं । वे सभी के लिए समान रूप से अन्ना और जल की तरह सहज ही सुलभ हैं।

"निगम अगम साहब सुगम राम सांची सी चाह।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबहि जग माह।।"

तुलसी की भक्ति भावना लोक को संगठित करने की भावना से प्रेरित है। ऐसे समय में जबकि निर्गुण संत कवि लोक की असारता का आख्यान गा रहे थे और कृष्ण भक्त कभी अपने आराध्य के मधुर रूप का आलंबन ग्रहण करके जन सामान्य में फैली निराशा की भावना को दूर करने का प्रयास कर रहे थे , उसी समय तुलसीदास मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सील , शक्ति और सौंदर्य से युक्त उनके अद्भुत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधना के मार्ग को प्रशस्त कर रहे थे ।उनकी सभी रचनाओं में राम के प्रति अनन्य भक्ति भावना दिखाई देती है यही कारण है कि उन्हें राम का एकनिष्ठ भक्त कहा गया है। इस संदर्भ में वे चातक को प्रेम और भक्ति का परम आदर्श मानते हुए कहते हैं -

"एक भरोसो एक बल एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ।।"

उनके मन में अपने इष्ट देव राम के प्रति अनन्य प्रेम ,भक्ति भाव ,विश्वास एवं भरोसा व्याप्त है। श्रद्धा और विश्वास ही उनकी भक्ति का आधार स्तंभ है ।रामचरितमानस और विनय पत्रिका दोनों ही ग्रंथ में उनकी भक्ति भावना अभिव्यक्त हुई है। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति है । वे अपने आराध्य राम के प्रति पूर्ण समर्पित दिखाई देते हैं और राम को अपना स्वामी और स्वयं को उनका सेवक मानते हैं। रामचरितमानस में वे स्पष्टता कहते हैं कि 'सेवक-सेव्य' भाव के बिना कोई भी व्यक्ति इस भवसागर से मुक्त नहीं हो सकता है।

"*सेवक- सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।'*

विनय पत्रिका ने तुलसी की भक्ति भावना अधिक स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है । वह स्पष्टता कहते हैं -"

ब्रह्म तू है जीव हौ तू ठाकुर हौ चेरो।
तात - मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो।।"

तुलसी की भक्ति में दैन्य भाव की प्रधानता है यही कारण है कि वे अपने आराध्य राम को महान एवं सर्वगुण संपन्न तथा स्वयं को तो तुच्छ, छोटा खोटा एवं पापी मानते हैं ।आत्म निवेदन कि इस प्रवृत्ति के कारण ही वे कहते हैं-

"राम सौ बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो?
राम सो खरो है कौन , मोसो कौन खोटो?"

तुलसी की भक्ति पद्धति में नवधा भक्ति का पूर्ण स्वरूप दिखाई देता है ।नवधा भक्ति के अंतर्गत श्रवण , कीर्तन ,पाद सेवन ,अर्चना, वंदन ,दास्य सख्य, नामस्मरण और आत्मनिवेदन आते हैं । तुलसीदास अपनी रचनाओं में जगह -जगह पर राम -नाम की महिमा का बखान करते हुए दिखाई देते हैं । वह कहते हैं -

"राम जप राम जपु राम जपु बावरे ।
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।।"

तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम विष्णु के अवतार हैं जो भक्तों की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा एवं कल्याण के लिए, दुष्टों का विनाश करने के लिए बार-बार अवतार लेते हैं । वह शक्ति सील और सौंदर्य के स्वामी हैं और परमात्मा रूप में अनादि, अविकारी , अजन्मा और परब्रह्म हैं । तुलसी की भक्ति भावना में विनय की सातों भूमिकाएं दैन्य, मानमर्षता, भयदर्शना ,भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य एवं विचारणा विद्यमान है। दैन्य नामक प्रथम भूमिका में भक्त स्वयं को तुच्छ और अपने आराध्य को महान मानते हुए उनसे निवेदन करते है कि वह अपने भक्तों को अपनी शरण में ले ले । जब भक्त अभिमान शून्य होकर अपने इष्ट देव के शरण में जाता है तो उसे मानमर्षता कहां जाता है और जीव को भय दिखाकर प्रभु की शरण में जाने के लिए प्रेरित करना ही भय दर्शना है। उदाहरण के लिए-

"राम कहतु चलू राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
ना ही तौ भव बेगार में परीहैं छूटत अति कठिनाई रे।।"

भक्त जब मन को समझा बुझाकर डांट डपट कर सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है तो उसे भर्त्सना कहते हैं। जैसे-

"ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओसकन की।।"

तुलसीदास कहते हैं कि हे प्रभु मेरे मन को मूर्खता ने ऐसे व्याप्त कर रखा है कि क्या बताऊं। इसी का परिणाम है कि वह (मन)राम भक्ति रूपी गंगा नदी से अपनी प्यास बुझाने की जगह ओस की बूंदों से अपनी प्यास मिटाने का प्रयत्न करता फिर रहा है । इन सांसारिक विषय भोग रूपी ओस की बूंदों से भला कैसे प्यास बुझ सकती है। इस सांसारिक मोहमाया रूपी भवसागर से मुक्ति के लिए तुलसीदास जहां अपने प्रभु पर विश्वास करते हुए अपने मन को जहां आश्वस्त करते हुए दिखाई देते हैं वहां विनय की सातों भूमिकाओं में से आश्वासन नामक भूमिका है ,और जहां उनके मन की कामनाओं की अभिव्यक्ति हुई है वहां पर मनोराज्य नामक भूमिका दिखाई देती है जैसे-

"कबहुकि हौं यह रहनि रहौगो?
श्री रघुनाथ कृपालु ते संत स्वभाव गहौगो।
जथा लाभ संतोष सदा काहू सौं कहु न चाहौगो।।"

संसार में व्याप्त मायाजाल की जटिलता को दिखाकर संसार की इस मोह माया से विरक्त होकर जब कोई साधक भक्ति भावना में लीन दिखाया जाता है तब वहां पर विचारणा नामक अंतिम भूमिका होती है। विनय पत्रिका के इस पद में इस भूमिका को देखा जा सकता है-

"केसव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए ।
सुन्य भीति पर चित्र रंग नहीं तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न मरै भीति दुख पाइअ यही तनु हेरे।।"

तुलसीदास विनय पत्रिका में अपने दैन्य, विषाद, विवशता और पीड़ा का निरूपण करने के साथ ही प्रभु राम के सामर्थ उनके प्रभुत्व और महानता का भी वर्णन करते हैं। उनका मानना है कि सगुन उपासक भक्त मोक्ष प्राप्ति की चिंता न करते हुए प्रभु की भक्ति में ही अपने जीवन की सार्थकता को देखते हैं। प्रभु की भक्ति के अतिरिक्त उन्हें इस संसार से और कुछ भी नहीं चाहिए । भक्ति ही एकमात्र उनका प्राप्य है वे कहते हैं-

"अरथ न धरम न काम रुचि गति न चाहौं निरवान।
जनम जनम रति राम पद यह वरदान न आन।।"

तुलसीदास भक्तों की प्राप्ति के लिए सत्संग को आवश्यक बताते हैं और कहते हैं –

" बिनु सत्संग विवेक न होई राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।"

अर्थात सत्संग के बिना विवेक नहीं हो सकता और विवेक के अभाव में तो भक्ति संभव ही नहीं है । सत्संग भी राम की कृपा के बिना नहीं संभव है। तुलसीदास ज्ञान और वैराग्य को भक्ति का साधन मानते हैं और रामचरितमानस के ज्ञान- भक्ति प्रसंग में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ बताते हैं। वह भक्ति मार्ग को ज्ञान मार्ग की अपेक्षा सरल एवं सहज बताते हैं। तुलसीदास भक्ति भावना के अंतर्गत एकादश और आशक्तियों को भी स्थान देते हैं जिनका उल्लेख नारद भक्ति सूत्र में किया गया है। ये आशक्तियां निम्न है- रूपाशक्ति, कांताशक्ति ,तन्मयाशक्ति ,परम बिरहाशक्ति ,गुणमहात्माशक्ति, पूजाशक्ति, स्मरणशक्ति, सख्यशक्ति,वत्सल्यसक्ति, आत्मनिवेदनशक्ति।

तुलसी की भक्ति में शरणागति के छः प्रकार भी देखने को मिलता है जो निम्न है -अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग ,रक्षा का विश्वास ,गोत्रीत्ववारण,आत्मनिक्षेपण,करपन्यता। तुलसीदास विनय पत्रिका में संकल्प व्यक्त करते हैं कि अब तक भले ही मैंने व्यर्थ के कार्यों में अपना समय व्यतीत कर दिया लेकिन अब भगवत कृपा से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हो चुका है। अब राम की भक्ति में ही अपना अतिरिक्त जीवन व्यतीत करूंगा वे कहते हैं-

"अब लौ नसानी अब न नसैहौ।
राम कृपा भव निसा सिरानी जागे फिर डसैहौ।।"

यहां पर अनुकूल के प्रति संकल्प की भावना दिखाई देती है और जो कार्य प्रभु की भक्ति से खुद को दूर करते हैं उसके परित्याग का संकल्प ही प्रतिकूल का त्याग है। तुलसीदास को अपने राम पर पूरा विश्वास है कि प्रभु सदा उनकी रक्षा करेंगे इसे ही रक्षा का विश्वास कहा गया है-

"कौन की आस करें तुलसी जो पै राखिहैं राम की है राम तो मारी है को रे?"

तुलसीदास के मन में अपने राम के प्रति अटल श्रद्धा और विश्वास है यही कारण है कि वे सांसारिकता को त्याग कर प्रभु की शरण में जाने के लिए बार-बार अपने मन को प्रेरित करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तुलसी की भक्ति पद्धति पर विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं "गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांग पूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका समन्वय है। ना उसका कर्म या धर्म से विरोध है ना ज्ञान से ।धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है उसमे पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए चित्र को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।"

सगुण भक्ति के कवि भीतर बाहर सभी जगहों पर ईश्वर की व्याप्ति मानते हुए व्यक्त जगत के बीच सर्वत्र उनकी उपस्थिति स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर ईश्वर वहीं प्रकट हो सकते हैं। तुलसीदास कहते हैं-

"पैज परे प्रहलदाहू को प्रगटे प्रभु पाहन ते न हिये ते।"

तुलसी के अनुसार ऊंच-नीच छोटा बड़ा हर व्यक्ति प्रभु की भक्ति का अधिकारी है क्योंकि ईश्वर छोटा या बड़ा नहीं देखता वह तो भक्तों के प्रेम को देखता है।

"रामहि केवल प्रेम पियारा जानि लेहु जो जाननी हारा।"

तुलसीदास मन वचन और कर्म की शुद्धता को भक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं ।उनके अनुसार भक्ति का मार्ग सबके लिए खुला है उस पर ना ही किसी का एकाधिकार है और ना ही किसी को किसी भी आधार पर उससे वंचित किया जा सकता है । भक्ति की चरम सीमा पर पहुंचने पर भी उन्होंने भक्ति के लोक पक्ष का त्याग नहीं किया था बल्कि यह उनकी भक्ति का हिस्सा था। आचार्य शुक्ल के अनुसार-" लोक संग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था कृष्ण उपासक भक्तों में इस अंग की कमी थी। उनके बीच उपास्य और उपासक के संबंध की ही गूढतीगूढ व्यंजना हुई ।दूसरे प्रकार के लोग व्यापक नाना संबंधों के कल्याणकारी सौंदर्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई यही कारण है कि इनकी भक्ति रस भरी वाणी जैसी मंगलकारी मानी गई वैसी और किसी की नहीं है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में ज्ञान और भक्ति का विषय निरूपण किया है। उत्तरकांड में भक्ति के लिए ज्ञान मार्ग को कठिन और भक्ति मार्ग को सहज और सरल बताते हैं ।अतः ईश्वर को दोनों ही मार्गों से पाया जा सकता है किंतु भक्ति मार्ग अपनी सरलता और सुगमता के कारण जन सामान्य में अधिक लोकप्रिय हुआ ।तुलसीदास ने भी अपनी भक्ति पद्धति में इसी भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया है।

2.6 तुलसी का समन्वयवाद

हिंदी भक्ति काव्य में तुलसी का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी लोकनायक थे अपने युग में उनकी किसी से समता न थी ।तुलसी का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जबकि धर्म, समाज, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में विषमता-विभेद और वैमनस्य की भावना घर कर गई थी । भक्ति के विभिन्न रूपों जैसे शैवों और वैष्णो में ईर्ष्या द्वेष बढ़ता ही जा रहा था ऐसे समय में तुलसीदास ने सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करके एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति किया। तुलसी से पूर्व संत कवियों ने भी सामान्य जनमानस में भावात्मक स्तर पर एकता स्थापित करने का प्रयास किया लेकिन उन्हें इतनी सफलता नहीं मिल सकी। तुलसीदास ने समाज में फैले असमानता को दूर करने के लिए समन्वय का अनूठा प्रयास किया। उनके इस योगदान की प्रशंसा करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद

द्विवेदी ने उन्हें बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोकनायक मानते हुए कहा है -"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके तुलसी का संपूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।"

समन्वय का अभिप्राय- विरोध दूर करके पारस्परिक भेदभाव को मिटाकर समरसता उत्पन्न करना। तुलसीदास ने समाज, धर्म,भक्ति एवं आचार -व्यवहार के क्षेत्रों में व्याप्त विषमता को दूर कर उनमें सामंजस्य बैठाने का अद्भुत प्रयास किया।

1-शैव और वैष्णव का समन्वय-

भारतीय समाज में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की परिकल्पना त्रिदेव के रूप में की गई है।जिसके अनुसार ब्रह्मा को सृष्टि उत्पादक, विष्णु को सृष्टि का पालक और शिव को संहारक माना गया है। विष्णु के उपासक वैष्णो और शिव के उपासक शैव कहलाते हैं। कालांतर में विष्णु और शिव के आराधक अपने अपने इष्ट देव को सर्वशक्तिमान मानने लगे परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे शैव और वैष्णो का यह वैमनस्य इतना बढ़ गया कि वे एक दूसरे के आराध्य देव को हेय और तुच्छ बताने लगे। तुलसी के समय में विद्वेष अपने चरम पर था अतः उन्होंने रामचरितमानस में शिव को विष्णु के अवतार राम का उपासक दिखाकर शिव से यह कहलवाया है-

"सोई मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।।

वहीं दूसरी ओर भगवान राम शिव को अपना आराध्य मानकर रामेश्वरम में उनकी स्थापना करते हैं । इतना ही नहीं बल्कि वह यहां तक कहते हैं कि-
" शिव द्रोही मम दास कहावा सो नर मोहि सपनेहु नहीं भावा।।"

तुलसी ने यहां पर राम को शिव का अनन्य भक्त सिद्ध करते हुए शैव और वैष्णो मतों में अनुपम सामंजस्य स्थापित किया है। वह राम और शिव में अभेद मानते हुए कहते हैं-

"हरिहर पद रति मति न कुतरकी।"अर्थात जो विष्णु और शिव के चरणों में प्रेम करते हैं जिनकी बुद्धि कुतर्क नहीं करती वही ईश्वर को प्रिय है । ऐसे लोग जो राम से तो प्रेम करते हैं लेकिन शिव के प्रति विद्वेष की भावना रखते हैं ऐसे मूर्ख व्यक्ति को कलप भर नरक में वास करना पड़ता है-

"संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भर घोर नरक मह वास"

तुलसी का कहना है कि सिर्फ शिव या राम की भक्ति करने वाला तथा एक दूसरे से द्वेष की भावना रखने वाला सच्चा ईश्वर भक्त नहीं हो सकता है। अतः उसे किसी के प्रति विद्वेष की भावना नहीं रखनी चाहिए

क्योंकि यह सभी एक ही तरह के ईश्वर के विभिन्न रूप हैं। इस तरह तुलसीदास ने शैव और वैष्णव के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

2-सगुण और निर्गुण का समन्वय –

तुलसी से पूर्व भक्तों के बीच ईश्वर सगुण है या निर्गुण इस बात को लेकर संघर्ष चल रहा था। तुलसी से पहले सूरदास ने भ्रमरगीत प्रसंग में ईश्वर को सगुण साकार मानते हुए गोपियों के माध्यम से निर्गुण का खंडन करवाया था और सगुण की महानता प्रतिपादित किया था, लेकिन तुलसीदास ने सगुण और निर्गुण का खंडन-मंडन न करते हुए दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया और दोनों के मध्य व्याप्त विद्वेष और वैमनस्य की भावना को दूर किया। उनका कहना है कि यद्यपि ईश्वर निर्गुण, निराकार,अव्यक्त,अविरल अमल, है फिर भी वह भक्त वत्सल दयालु दीन है और अपने भक्तों की रक्षा के लिए उन पर अपनी कृपा करने के लिए एवं धर्म की स्थापना के लिए सगुण रूप में अवतरित होते हैं। अपने भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर ही निर्गुण ब्रह्म सगुण साकार रूप धारण करता है-

"अगुनहिं सगुनहिं नही कछु भेदा, बारि बीचि जिमि गावहीं वेदा।
अगुन अरूप अलख आज जोई, भगत प्रेम बस सगुन सो होइ।।"

तुलसीदास कहते हैं कि जिस तरह से बर्फ ,ओले और जल बाहर से भले ही अलग-अलग रूप में दिखाई देते हो लेकिन उनका मूल तत्व एक ही है जल उसी प्रकार ईश्वर भी एक ही है सगुण और निर्गुण उनके अलग-अलग रूप हैं इनमें मूलतःकोई अंतर नहीं है।

3- ज्ञान और भक्ति का समन्वय-

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में ज्ञान और भक्ति का समन्वय भी किया है, क्योंकि उनसे पहले सगुण और निर्गुण मार्ग में कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है भक्तों के लिए इस बात को लेकर विवाद चल रहा था । निर्गुण मार्गी ज्ञान मार्ग को श्रेष्ठ बताते तो सगुण मार्गी भक्ति मार्ग को श्रेष्ठ बताते थे, किंतु तुलसी ने ज्ञान की कठिनाई का उल्लेख करते हुए भी भक्तों के लिए ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित किया और दोनों में संबंध स्थापित किया।वह ज्ञान मार्ग को तलवार की धार के समान पैना बताते हुए कहते हैं इस तरह जहां भी एक तरफ ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उसे तलवार की धार बताते हुए कहते हैं -
"ग्यान पंथ कृपान कै धारा"

इस तरह जहां वे एक तरफ ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उसे तलवार की धार बताते हैं वहीं दूसरी ओर

" कहहीं संत मुनि वेद पुराना, नहि कछु दुर्लभ ज्ञान समाना"

कहकर ज्ञान की श्रेष्ठता भी प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार ज्ञान मार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग भले ही सरल एवं सहज है लेकिन भक्ति और ज्ञान दोनों का समान महत्व है दोनों मार्ग ही सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाने में समर्थ है ।तुलसीदास उत्तरकांड में निरूपित ज्ञान भक्ति प्रसंग में ज्ञान और भक्ति दोनो का सामान महत्व है, दोनो मार्ग ही सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाने में समर्थ हैं-

"भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा, उभय हरहि भव सम्भव खेदा।।"

तुलसीदास उत्तरकाण्ड में निरूपित ज्ञान भक्ति प्रसंग में ज्ञान को दीपक और भक्ति को मणि का प्रतीक बताते हुए कहते हैं 'कि ज्ञान का दीपक बहुत ही कठिनाई से प्रज्ज्वलित होता है और माया -मोह जैसे विकारों को जलाकर राख कर देता है लेकिन जब विषय वासना रूपी वायु के चलने पर वह बुझ जाता है, जबकि भक्ति रूपी मणि हमेशा दैदीप्यमान रहती है। इसे विषय विकार रूपी वायु भी नहीं बुझा पाती है।

तुलसीदास ने भले ही भक्ति मार्ग को सहज और सरल बताते हुए उसकी श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने का प्रयास किया हो लेकिन सूरदास की तरह ज्ञान मार्ग का खंडन नहीं किया है ।उनका मानना है कि भक्ति ज्ञान और वैराग्य से युक्त होकर शोभा पाती है-

"कहहीं भगति भागवंत कै संजुत ग्यान-विराग।"

वे कहते हैं कि वेदों में भी ज्ञान और वैराग्य से युक्त भक्ति की श्रेष्ठता को ही प्रतिपादित किया गया है -

"श्रुति सम्मत हरि-भगति पथ संजुत विरति विवेक।।"

अतः स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने सर्वत्र ज्ञान और भक्ति का समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

4-दार्शनिक क्षेत्र में समन्वय –

तुलसी से पूर्व अनेक मत प्रचलित थे इस संदर्भ में डॉक्टर द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कथन उल्लेखनीय है -"तुलसी से पूर्व सभी भक्त आचार्यों ने शंकर के अद्वैतवाद का खंडन करके अपने- अपने मत की स्थापना की थी इसलिए रामानुजाचार्य शंकर के अद्वैतवाद का विरोध करके अपने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया ,मध्वचार्य ने अपने द्वैतवाद का प्रचार किया, विष्णु स्वामी ने शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया, निंबार्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद का प्रचार किया था। गोस्वामी जी रामानुजाचार्य के मतानुयाई होने के कारण विशिष्टाद्वैत को मानते थे और इसी कारण अपने जीव को ईश्वर का अंश कह कर ईश्वर की ही भांति चेतन,अमल,अविनाशी,आदि कहा है। ब्रह्म को सगुण- निर्गुण अगुण आदि कहकर विशिष्टता का प्रतिपादन किया है। वहीं विनय पत्रिका में तुलसीदास ने शंकराचार्य के अद्वैत के अनुरूप ही ब्रह्म को अज, सर्वज्ञ और सत्य माना तथा जीव और जगत को मिथ्या करार

देते हुए अद्वैतवाद की विचारधारा का समर्थन किया है ।इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने माया का स्वरूप भी शंकर के अनुसार ही निरूपित किया तथा वे रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित विशिष्टाद्वैतवाद के अनुयाई थे यही कारण है कि जीव को ईश्वर का अंश मानकर ईश्वर की ही तरह उसे भी चेतन अमल और अविनाशी मानते हैं ।

"ईश्वर अंश जीव अविनाशी चेतन अमल सहज सुख रासी।।सो मायावस भयहु गोसाईं।बधेहु कीट मर्कट की नाहीं।।"

संसार को भी उन्होंने शून्य में निर्मित चित्र मानकर विशिष्ट वादी विचारधारा का समर्थन किया ।वे संसार के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पाहिचाने।।"

अतः तुलसी ने दार्शनिक क्षेत्र में व्याप्त वैचारिक मतभेद को दूर करते हुए सभी विचारधाराओं का समनव्यय करने का प्रयास किया है।

5- राजा और प्रजा का समन्वय –

जिस समय तुलसी का प्रादुर्भाव हुआ उस समय देश में मुसलमानों का शासन था और राजा और प्रजा के बीच गहरी खाई बनती जा रही थी। राजा प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों को भूल चुके थे जिसकी वजह से प्रजा को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। तुलसीदास ने तत्कालीन समय की इस स्थिति का निरूपण रामचरितमानस के उत्तरकांड में कलयुग वर्णन के माध्यम से किया है। इतना ही नहीं बल्कि रामराज्य की परिकल्पना के माध्यम से उन्होंने आदर्श शासन व्यवस्था का रूप भी समाज के सामने प्रस्तुत किया ।राजा के कर्तव्य एवं दायित्व का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं -

"मुखिया मुख सो चाहिए खानपान कौ एक ।
पालई पोषक सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।"

वहीं दूसरी ओर प्रजा को राजा के हाथ, पैर और आंखों की तरह होने की बात करते हैं-

"सेवक कर पद नयन सो, मुख सो साहिबु होय।"

इस तरह तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से जहां एक ओर प्रजा के कर्तव्यों का वर्णन किया है वहीं दूसरी ओर राजा के प्रजा के प्रति उसके दायित्वों का बोध कराते हुए राजा और प्रजा में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

6- पारिवारिक जीवन में समन्वय –

तुलसी के रामचरितमानस में धर्म के क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि पारिवारिक जीवन में भी अनुपम सामंजस्य देखने को मिलता है। पारिवारिक जीवन में नैतिक मूल्यों के पक्षधर तुलसी मर्यादा वादी कवि के रूप में जाने जाते हैं । उनका रामचरितमानस परिवार के विभिन्न संबंधों के मध्य मर्यादावादी व्यवहार का दर्पण है । उनके सभी पात्र परिवार के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं । राम के रूप में उन्होंने जहां एक और आदर्श पुत्र ,आदर्श भाई ,आदर्श पति एवं आदर्श मित्र का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं वहीं दूसरी ओर भरत को भ्रातृत्व भावना के आदर्श के रूप में और लक्ष्मण को अग्रज के प्रति सेवा भाव के चरित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।हनुमान यदि सेवक धर्म के आदर्श हैं तो विभीषण सच्चे भक्त और सुग्रीव मैत्री धर्म के आदर्श हैं। तुलसी ने रामचरितमानस के माध्यम से जीवन मूल्यों को प्रस्तुत किया है जो प्राचीन भारतीय संस्कृति का पोषण करने के साथ ही उसके उदात्त स्वरूप को भी प्रस्तुत करते है । जहां राज्य पाने के लिए कोई संघर्ष नहीं है। पिता की आज्ञा का पालन करते हुए चौदह वर्षों तक बनवास में रहकर राम ने एक आदर्श पुत्र होने का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है।

7-साहित्यिक क्षेत्र में समन्वय-

तुलसीदास अपने समय में प्रचलित ब्रज एवं अवधी दोनों काव्य भाषा के क्षेत्र में भी समन्वय का प्रयास किया है। उन्होंने यदि रामचरितमानस, बरवै रामायण ,पार्वती मंगल ,जानकी मंगल ,रामलला नहछू की रचना शुद्ध साहित्यिक अवधी भाषा में किया तो विनय पत्रिका, कवितावली ,गीतावली ,दोहावली की रचना ब्रजभाषा में किया ,इसके साथ ही उस समय में प्रचलित सभी काव्य शैलियों का भी प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है ।रामचरितमानस में दोहा- चौपाई की पद्धति अपनाई गई है तो विनय पत्रिका में पद शैली का प्रयोग किया गया है। कवितावली कवित्त -सवैया शैली में दोहावली में दोहा, गीतावली में पद शैली, बरवै रामायण में बरवै शैली का प्रयोग किया गया है ।रामचरितमानस और विनय पत्रिका की स्तुतियों में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है । स्रोतों का प्रयोग स्तुतियों में करते हुए उन्होंने कथा शैली एवं स्रोत शैली का भी समन्वय किया है। अतः स्पष्ट है कि तुलसीदास रामचरितमानस में साहित्य के क्षेत्र में भी समन्वय का अनूठा प्रयास किया है।

8- नर एवं नारायण का समन्वय-

तुलसी कहते हैं कि धर्म की स्थापना और असुरों का संहार करने के लिए भगवान विष्णु ही राम के रूप में अवतरित हुए हैं ।अतः उन्होंने राम को दशरथ पुत्र के रूप में स्वीकार करते हुए परम ब्रह्म परमात्मा के रूप में भी स्वीकार करते हैं । वे कहते हैं-

"भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।"

वे कहते हैं कि राम भले ही मनुष्य के रूप में अवतरित होकर नर लीला कर रहे हैं किंतु वे अखंड ,अनंत ,अज, अरूप एवं अचल परब्रह्म ही हैं जो अपने भक्तों की रक्षा के लिए और धर्म की स्थापना के लिए अवतार लिए हैं-

"विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुण गो पार।।"

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि तुलसी सच्चे अर्थों में महान समाज सुधारक ,समन्वय करता एवं लोक नायक थे ।उन्होंने जीवन और जगत के हर क्षेत्र में समन्वय का प्रयास किया । खंडन मंडन की प्रवृत्ति से परे जाकर तुलसी ने समन्वय वादी दृष्टि का परिचय दिया तथा समाज में व्याप्त विषमता ,वैमनस्य और कटुता को दूर कर सौहार्द्र और समता का रास्ता दिखाया। हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन अक्षरसः सत्य ही है कि "उनका सारा काव्य समन्वय कि विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु गृहस्थ और वैराग्य का भी भक्ति और ज्ञान का भाषा और संस्कृति का निर्गुण और सगुण का पुराण और काव्य का भाववेग और अनासक्त चिंता का समन्वय रामचरितमानस के आदि से अंत तक दो छोरो पर जाने वाली परकोटियो को मिलाने का प्रयत्न है। तुलसी के इसी महत्व को चिन्हित करते हुए हरिऔध जी लिखते हैं-

" कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कल।।"

4.4 सारांश

मध्यकालीन हिंदी कविता में कृष्ण भक्ति शाखा में सूरदास और राम भक्ति शाखा के कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान सर्वोच्च है । "सूर सूर तुलसी ससि" के माध्यम से इन भक्त कवियों की महत्ता अपने आप प्रकट हो जाती है। सूर उच्च कोटि के भक्त थे वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्गीय परंपरा में दीक्षित होकर उनकी प्रतिभा और निखर गई। भागवत कथा में वर्णित उधव- गोपी संवाद को लेकर उसे एक क्रमिक और साहित्यिक रूप देने का कार्य सूरदास ने किया। सगुण -निर्गुण द्वंद राधा का वियोग, कुब्जा का उल्लेख ,प्रेम निरूपण ,गांव और नगर के बीच द्वंद्व आदि सूरदास की मौलिक उदभावनाएं हैं।

तुलसीदास अपने रामचरितमानस में परिवार व्यवस्था ,लोकमंगल की अवधारणा और रामराज्य की स्थापना कविता के माध्यम से करते हैं। उस समय भारतीय समाज में व्याप्त विषमता पर भी चोट करते हैं। देश मे गरीबी ,भूखमरी जैसे विषय भी तुलसी के काव्य में ठीक से वर्णित किये गए हैं।

4.5 मुख्य शब्दावली

चातक- पपीहा
निरबान -मोक्ष
रति -प्रेम
पाषाण- पत्थर
विप्र- ब्राह्मण
धेनु -गाय
बिंब -परछाई
मणिमय -रत्नजड़ित
घुटुरुअनी- घुटनों के बल
गोसैया- मालिक
उर -हृदय

4.6.अपनी प्रगति जाँचिये के उत्तर

1. ज्ञानाश्रयी निर्गुण काव्य धारा
2. रामभक्ति सगुण काव्य धारा

4.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1 -तुलसी के काव्य सौष्ठव पर टिप्पणी लिखिए ।
2- तुलसी की भक्ति भावना पर टिप्पणी लिखिए।
3- तुलसी का काव्य और उपमा अलंकार पर टिप्पणी लिखिए। 4- तुलसी के समन्वयवाद पर टिप्पणी कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1- तुलसी का समन्वयवाद हिंदी काव्य जगत में अनुपम है। उक्त कथन की समीक्षा कीजिए।
2- रामचरितमानस के भाव सौंदर्य का वर्णन कीजिए।
3- तुलसी का काव्य उच्चतम काव्यशास्त्रीय मानदंडों को स्पर्श करता है। विवेचना कीजिए।

4- तुलसी के काव्य में प्रेम के स्वरूप की समीक्षा कीजिये।

4.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1-तुलसी के काव्य में प्रेम के स्वरूप को इस इकाई में पढ़ा जा सकता है।

2-आदर्श परिवारव्यवस्था और राम राज्य की अवधारणा के विषय में ठीक से समझा जा सकता है।

3- सूर का विरह वर्णन भी पढ़ सकते हैं।

4- भ्रमरगीत प्रसंग को भी पढ़ा जा सकता है।

5 -काव्यशास्त्रीय प्रतिमानो पर रखकर सूर और तुलसी दोनो के काव्यो का अध्ययन भी कर सकते हैं।

इकाई 3 कविता-II

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई अध्ययन के उपरांत आप-

*घनानंद और मैथलीशरण गुप्त के जीवन और उनके साहित्य से परिचित हो पायेंगे;

* मैथलीशरण गुप्त की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना को जान पायेंगे;

* मैथलीशरण गुप्त की काव्य विशेषताओं से अवगत हो पाएँगे;

*घनानंद की प्रेम साधना और भक्ति संबंधित ज्ञान से अवगत हो पाएँगे;

*रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानंद का क्या स्थान है इस विषय में जानकारी हासिल कर पाएँगे;

3.2 घनानंद : सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य के रीतिकाल के कवि घनानंद का जन्म 1689 ईसवी और मृत्यु 1739 ईस्वी के लगभग माना जाता है, परंतु यह निश्चित जानकारी नहीं है। कुछ लोग इनका जन्म स्थान उत्तर प्रदेश के जनपद बुलंदशहर में मानते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि इनका जन्म 1677 ईसवी और इनका निधन 1739 ईसवी के लगभग माना जाता है। इनका निधन अब्दाली दुर्रानी मथुरा में किए गए कत्लेआम में हुआ माना जाता है। घनानंद श्रृंगार धारा के कवि माने जाते हैं यह सखी भाव से कृष्ण की उपासना करते थे। विरक्त होने से पहले ये बहादुर शाह के मीर मुंशी थे । वहीं पर सुजान नामक नृत्यांगना से इनका प्रेम हो गया। इन्होंने अपनी प्रेमिका को संबोधित करके ही अपनी काव्य रचनाएं की हैं। कुछ विद्वान इनकी रचना में अध्यात्मिकता भी मानते हैं।

घनानंद और सुजान- घनानंद जी के काव्य में सुजान का ही वर्णन मिलता है पर यह सुजान कौन थी? इसका वर्णन भी आवश्यक हो जाता है । घनानंद मुहम्मद शाह रंगीले के

दरबार में खास कलम थे। ये फारसी में माहिर थे। एक तो कवि और दूसरे सरस गायका प्रतिभा संपन्न होने के कारण बादशाह का इन पर विशेष अनुग्रह था ।मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार की एक नृत्य गायन विद्या में निपुण सुजान नामक वेश्या से इनको प्रेम हो गया इधर सुजान की इन पर अनुरक्ति और दूसरी और भाषा के खास कलम इन दोनों बातों से घनानंद की उन्नति से सभी दरबारी मन ही में ईष्या करते थे। अंततः उन्होंने एक ऐसा षडयंत्र रचा जिसमें घनानंद पूरी तरह लुट गए। जन श्रुति के अनुसार दरबारी लोगो ने मुहम्मद शाह रंगीले से कहा कि घनानंद बहुत अच्छा गाते हैं उनकी बात मान कर बादशाह ने एक दिन इन्हें गाने के लिए कहा पर ये इतने स्वाभिमानी मनमौजी व्यक्ति थे कि गाना गाने से इनकार कर दिया दरबारी लोगों को पता था कि बादशाह के कहने पर कभी गाना नहीं गाएंगे और हुआ भी वही। दरबारी लोग इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने बादशाह से कहा कि यदि सुजान को बुलाया जाए और वह घनानंद से अनुरोध करें तो यह अवश्य गाना गाएंगे और यह हुआ भी। इससे क्रोधित होकर बादशाह ने तत्काल घनानंद को दरबार व राज्य छोड़ने के आदेश दिया। दरबारियों की चाहत पूर्ण हो चुकी थी। घनानंद ने चलते समय सुजान से साथ चलने का आग्रह किया। परंतु उसने अपने जातीय गुण की रक्षा की और घनानंद के साथ जाना अस्वीकार कर दिया। जान और जहान दोनों ही लुटा कर घनानंद ने वृंदावन की ओर चल दिये। वृंदावन में उन्होंने निंबार्क संप्रदाय में दीक्षा ली।

घनानंद की मृत्यु तिथि भी उनकी जन्मतिथि के समान ही विवादास्पद है। घनानंद की अभिलाषा थी कि वे बृजराज में लौटते हुए ही अपने प्राण त्यागे इस बात की पुष्टि' राधा कृष्ण ग्रंथावली' में एक स्थान पर मिलती है। मथुरा में कत्लेआम करने वालों से उन्होंने कहा कि मुझे तलवार के घाव थोड़ी थोड़ी देर तक दो । इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव थोड़ी थोड़ी देर में लगते गए, त्यों- त्यों ये ब्रजराज में लौटते रहे। इस प्रकार देह त्याग दी।

कृतियां हैं-

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लंदन म्यूजियम से घनानंद की रचनाओं की माइक्रो फिल्म मंगाकर बड़ी मेहनत के साथ उनकी ग्रंथावली का संपादन किया है। उन्होंने घनानंद के छोटे बड़े 41 ग्रंथ बताएं हैं जिनके नाम है –

सुजान हित, कृपाकंद निबंध, वियोग बेलि, इश्कलता, यमुना-यश, प्रीतिपावस, प्रेम-पत्रिका, प्रेम-सरोवर, ब्रजविलास, सरस वसंत, अनुभव चंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, वृषभानुपुर सुषमा, गोकुल गीत, नाम-माधुरी, गिरी पूजन, विचार-सार, दानघटा, भावना प्रकाश, कृष्ण-कौमुदी, धामचमत्कार, प्रियाप्रसाद, वृंदावनमुद्रा, ब्रजस्वरूप, गोकुल चरित्र, प्रेम पहेली, रस नायक, गोकुल-विनोद, ब्रजप्रसाद , मुरलीकामोद, मनोरथ मंजर, ब्रज व्यवहार, गिरिगाथा, ब्रज-वर्णन, छंदष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त-संग्रह, स्फुट, पदावली, परमहंस वंशावली।

3.3 घनानंद की प्रेम साधना और भक्ति

रीतिमुक्त कवियों में प्रधानता प्राप्त करने वाले कविवर घनानंद ने अपने काव्य की रचना प्रेम को आधार बनाकर किया है। घनानंद के काव्य की प्रमुख भावना उन्मुक्त प्रेम है । यह प्रेम लौकिक से आलौकिक की ओर जाता है। कवि ने रूप सौंदर्य के बड़े मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किए हैं। उनका समस्त काव्य प्रेम की पीर को ही अभिव्यंजित करता है। उनकी प्रेम भावना में निम्नलिखित विशेषताएं हैं जैसे आसक्ति प्रधान, साधना प्रधान, भावात्मक ,अभिलाषा प्रधान ,स्वच्छंद इत्यादि।

आसक्ति प्रधान- घनानंद जी का प्रेम सुजान से प्रारंभ हुआ वे उस पर आसक्त थे। किंतु उसकी निर्मोहकता के कारण जब उन्हें विरह सहना पड़ा तो वहीं आसक्ति कृष्ण एवं राधा के प्रति उन्मुख हो गई। वे सुजान पर तब भी, इतने आसक्त थे कि रूप निधान सुजान को देखे बिना उनकी दृष्टि सब ओर से पीठ कर लेती है। आँखे पुतलियों से उखिल की भाँति खटकती रहती हैं। मूँदने पर अकुलाती हैं एवं जीव डूबने लगता है। यही नहीं सुजान की उत्तम छवि रात दिन उनके नयन एवं उरस्थल में बसी रहती है , वे उसके ओझल हो जाने पर कराहते हैं-

"निस-द्यौस खरी उर मांझ अरी,छवि रंग गुरु चाहनि की।

× × ×

घन आनन्द जान लखी जब ते, जक लागिवै मोहि कराहनि की।।"

भावात्मक प्रेम - घनानंद का प्रेम स्थूल और शारीरिक नहीं है। उसमें प्रिय के हृदय की मार्मिक भावनाओं का विश्लेषण हुआ है । वह संयोग में भी वियोग की सी वेदना का अनुभव करता है । वह केवल प्रिय का सानिध्य चाहता है। उसमें कामुक जैसे अश्लील चेष्टा एवं ऐन्द्रिक भोग विलास का वर्णन नहीं है। वह तो केवल अभिलाषाओं के विविध चित्र अंकित करने में निरत रहता है । रूप वर्णन में भी वासना के दर्शन नहीं है। उसके प्रेम में गंभीर एवं हृदयस्पर्शी भावों के दर्शन होते हैं। वह अपने प्रिय की आरती अपने ह्रदय दीपक से संजोता है। इसमें स्नेह का तेल एवं वियोग व्यथा बत्ती है-

नेह सों मोह सजोय धरो हिय,दीप दसा जु भरी अति आरति।

भावनाथार हुलास के हाथनि,यो हित मूरति हेरि उतारति।

अतः सिद्ध होता है की घनानंद के प्रेम का रूप भावनात्मक है शारीरिक नहीं।

साधना प्रधान -घनानंद के प्रेम में अपने प्रियतम के प्रति जितनी गहन आसक्ति है उतनी ही प्रगाढ़ उसे निर्वाह करने की क्षमता है। वियोग व्यथाएँ पर्वताकार होकर आती हैं किंतु कवि का हृदय जरा भी विचलित नहीं होता है। प्रिय की निर्मोहकता, कपट, रूखापन, प्रेमी के हृदय की टेक में अंतर नहीं ला सकते। वह अपनी प्राण प्रिया सुजान से मृत्यु के समय भी प्रेम करना नहीं छोड़त। उसके प्राण तो विसासी सुजान का संदेश लेकर बाहर निकलना चाहते हैं।

"झूठी बतियान की पत्यानि ते उदास हौके, अब ना धिरत घन आनंद निदान कौ।

अधर लगे है आनि करि के पयान प्रान, चाहत चलन ये सन्देसो लै सुजान कौ।"

अभिलाषा प्रधान -घनानंद का प्रेम अभिलाषा को लिए हुए हैं उस में कहीं भी चिर शांति नहीं है। वह संयोग तथा वियोग दोनों अवस्थाओं में अपनी चाह की अंतर ज्वाला से चलता ही रहता है। वियोग में प्रिय मुख दर्शन की चाह के लिए छटपटाता है। मिलने पर अनेक मनोरथ की झर लगा देता है और मिलकर भी उसका मिलाप नहीं हो पाता अतः फिर प्रिय दर्शन की रट प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार उसके मन में आदि से अंत तक अभिलाषा ही अभिलाषा है ।अनेक यतन करने पर भी वह समाप्त नहीं होती-

"जतन बुझे है सब जाकी झर आगे अब, कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की।

जब ते निहारे घन आनन्द सुजान प्यारे, तब ते अनोखी आगि लागि रही चाह की। "

स्वच्छंद प्रेम- घनानंद के प्रेम में रीतिमुक्त कवियों की भांति सर्वत्र स्वच्छता के दर्शन होते हैं । इसी कारण वे लोक मर्यादा का उलंघन कर सुजान वेश्या से प्रेम करते हैं। उसी का प्रेम उनके रोम-रोम में रमा हुआ है।

"चाहो अनचाहो जान प्यारे पै आनंदघन, प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।"

भक्ति -घनानंद ने अपनी भक्ति भावना को राधा और कृष्ण के प्रति व्यक्त किया है। जितना भावोन्मेष उन्होंने कृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट करने में दिखाया है। राधा के प्रति भक्ति भावों में उस से कम नहीं। उनकी भक्ति भावना के आलंबन श्री राधा और कृष्ण ही नहीं ब्रज के पवित्र स्थल भी हैं।

"सब तै आम अगोचर ब्रज रस। रसना कहि न सकति याको जस।। "

सच्ची अनन्यता- वह अपने कृपा कंधे में अपने पूर्व कृत कुकर्मों पर पश्चाताप दोषों की स्वीकृति ईश्वर की सर्व शक्तिमता पर विश्वास एवं भव बंधन से स्वयं को छुड़ाने के हेतु प्रार्थना करते हैं-

"भूल भरे की सूरति री।

अपनी गुन निधानता उरधरि मो अनेक औगुनि बिसरो। "

राधा के प्रति भक्ति- कवि ने निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित होकर सखी संप्रदाय के संतों में उच्च कोटि का स्थान प्राप्त किया था। उन्होंने राधा के प्रति अनन्यता एवं समर्पण भाव को प्रिय में अत्यंत सुकुमार भावना के साथ व्यक्त किया है।

"आपत चरन तनक झुकि जाऊँ।

धुवे सीत राधा के पाऊँ।

राधा की जूठनि ही जियो।

राधा की प्यासीन ही पियो। "

राधा के स्वरूप का वर्णन- राधा के प्रति भक्ति भावना की अभिव्यक्ति करने वाला वाक्य तो आप देख ही चुके हैं ।जिसमें आराध्य राधा के दर्शन होते हैं इसके अतिरिक्त राधा को आलंबन मानकर काव्य की रचना की गई है। इसमें राधा के स्वरूप का वर्णन उसके रूप सौंदर्य से प्रभावित कृष्ण की दशा राधिका की चाल तथा उनकी हास्य ललित मुद्रा का वर्णन कवि ने किया है। राधिका की हंसी की कौंध ने कृष्ण को सराबोर कलकर दिया है और कपोलो पर गुलाल मसल कर ना जाने कौन- सा जादू कर दिया है-

"कौंधि घन आनन्द को भिजयौ हँसनि ही मैं,

हाथ कियो लालहि गुलालहि मसरि कै। "

श्री कृष्ण का स्वरूप वर्णन- कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन तो घनानंद के काव्य में हुआ है किंतु उनकी गति, चितवन, लीला, गुण, श्रवण एवं रूप तरंगों की पाशावलि मैं फँसकर गोपी एवं राधा की जो मार्मिक दशा होती है उसका वर्णन कवि ने प्रभूत रूप से किया है। गोपिया कहती हैं कि उसकी मंद मुस्कान चंचल चितवन एवं मंद गति मेरे मन का हरण कर लेती हैं।

"नेकु ही मैं मेरो कुछ मोपै न रहन पायी,

ओचक ही आय लूट लूट सी वितै गयो। "

इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्द के काव्य में प्रेम एवं भक्ति दोनों दिखलायी पड़ता है। एक तरफ धार्मिक भावनाओं से युक्त भक्ति का मूर्तिमान स्तूप हैं तो दूसरी ओर प्रेम की स्वच्छंद अभिव्यक्ति। घनानंद का प्रेम लोक से दूर आलौकिक नियमों पर आधारित है। जहां सुजान से लौकिक प्रेम हुआ है जिसे उन्होंने अलौकिक अभिव्यक्ति दी। वहीं राधा कृष्ण के माध्यम से अलौकिक प्रेम को लौकिक अभिव्यक्ति दी।

3.4 रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानंद का मूल्यांकन

रीतिमुक्त कवि वे हैं जिन्होंने ना तो लक्षण ग्रंथों की रचना की न ही लक्षण ग्रंथों की रीति से बंधकर अपनी रचनाएं की। इस प्रकार रीतिकालीन कविता के दौर में भी ये लोग परंपरागत शैली से हटकर स्वच्छंद रूप से रचना करते रहे। रीतिकाल में एक ओर तो रीति का अनुपालन करने वाले कवि थे। वहीं इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम और श्रृंगार की अभिव्यक्ति के अलौकिक रूप को महत्व दिया। जो भारतीय पद्धति में एक नई चीज के रूप में देखा जा सकता

है। रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छंद रहकर रचनाएं की हैं। रीतिमुक्त स्वच्छंदतावादी कवियों में घनानंद का स्थान सर्वश्रेष्ठ है इनकी कविताओं में अलग-अलग विशेषताएं देखने को मिलती हैं जिनसे हमें पता चलता है कि उन्होंने स्वच्छंद होकर कविताएं लिखी हैं।

वैयक्तिक प्रेम- घनानंद सुजान नामक नर्तकी से प्रेम करते थे । सुजान दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले की सभा की शोभा थी। घनानंद उसके रूप पर आसक्त थे उनकी आसक्ति सुजान में इतनी थी कि उसके लिए अपने प्राण भी न्योछावर कर सकते थे। एक बार बादशाह के कहने पर घनानंद ने अपना संगीत नहीं सुनाया और सुजान के कहने पर तुरंत तानपुरा उठाकर संगीत सुनाने बैठ गए। इतना ही नहीं घनानंद का मुंह सुजान की तरफ था। घनानंद सुजान के रूप प्रेम में मदमस्त थे। बादशाह को अपना अनादर सहा नहीं गया उसने घनानंद को अपनी राजधानी से बाहर निकलवा दिया। घनानंद के कहने पर सुजान उसके साथ नहीं गई । तब घनानंद उसके प्रेम में पागल हो गए तथा काव्य प्रेम का चित्रण करने लगे घनानंद ने अपनी प्रिय सुजान को माध्यम बनाकर काव्य सौंदर्य का प्रस्तुतीकरण किया है।

'रूप खिलार दिवारी किए नित जोबन छाकि न सूधे निहारै। '

प्रेम की अनन्यता- घनानंद सुजान से बिछड़ने के बाद उससे अटूट प्रेम करते हैं। वे अपनी पीड़ा इस प्रकार कहते हैं-रीतिमुक्त कवि वे हैं जिन्होंने ना तो लक्षण ग्रंथों की रचना की न ही लक्षण ग्रंथों की रीति से बंधकर अपनी रचनाएं की। इस प्रकार रीतिकालीन कविता के दौर में भी ये लोग परंपरागत शैली से हटकर स्वच्छंद रूप से रचना करते रहे। रीतिकाल में एक ओर तो रीति का अनुपालन करने वाले कवि थे। वहीं इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने संस्कृत साहित्य से सुंदरी के लक्षण ना लेकर प्रेम और श्रृंगार की अभिव्यक्ति के अलौकिक रूप को महत्व दिया। जो भारतीय पद्धति में एक नई चीज के रूप में देखा जा सकता है।

रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छंद रहकर रचनाएं की हैं। रीतिमुक्त स्वच्छंदतावादी कवियों में घनानंद का स्थान सर्वश्रेष्ठ है इनकी कविताओं में अलग-अलग विशेषताएं देखने को मिलती हैं जिनसे हमें पता चलता है कि उन्होंने स्वच्छंद होकर कविताएं लिखी हैं।

वैयक्तिक प्रेम- घनानंद सुजान नामक नर्तकी से प्रेम करते थे सुजान दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले की सभा की शोभा थी। घनानंद उसके रूप पर आसक्त थे उनकी आसक्ति सुजान में इतनी थी कि उसके लिए अपने प्राण भी न्योछावर कर सकते थे। एक बार बादशाह के कहने पर घनानंद ने अपना संगीत नहीं सुनाया और सुजान के कहने पर तुरंत तानपुरा उठाकर संगीत

सुनाने बैठ गए। इतना ही नहीं घनानंद का मुंह सुजान की तरफ था घनानंद सुजान के रूप प्रेम में मदमस्त थे। भाषा को अपना अनादर सहा नहीं गया उसने घनानंद को अपनी राजधानी से बाहर निकलवा दिया घनानंद के कहने पर सुजान उसके साथ नहीं गई ।तब घनानंद उसके प्रेम में पागल हो गए तथा काव्य प्रेम का चित्रण करने लगे घनानंद ने अपनी प्रिय सुजान को माध्यम बनाकर काव्य सौंदर्य का प्रस्तुतीकरण किया है।

'रूप खिलार दिवारी किए नित जोबन छाकि न सूधे निहारै। '

प्रेम की अनन्यता- घनानंद सुजान से बिछड़ने के बाद उससे अटूट प्रेम करते हैं वे अपनी पीड़ा इस प्रकार कहते हैं-

"भए अति निठुर पहिचानि डारी,

था ही दुख हमै जक लागी हाय हाय है।

तुम तौ निपट निरदई गई भूलि सुधि,

हमै सूल सेना सौ क्यों हू न भुलाय है।"

विरह वर्णन- घनानंद के काव्य में विरह की प्रधानता है विरह में उनका ह्रदय मार्मिक व द्रवित है। प्रिय के वियोग में प्राण कैसे व्याकुलता अनुभव करते हैं इसका चित्रण करते हुए उन्होंने स्मृति, विषाद ,आवेद ,ग्लानि जैसे मनोभावों को इस सवैया में दिखाया है।

"रैन दिना घुटिबो करै प्राण झरै आबियाँ दुखिवा झन रासी।

प्रीतम की सुधि अंतर में कसकै सरिन ज्यों परसीन में गांसी। "

प्रकृति चित्रण -घनानंद के काव्य में प्रकृति की मनोहर छटा अंकित हुई है। आलंबन रूप की अपेक्षा उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में ही चित्रण अधिक किया है। घनानंद का काव्य प्रेम प्रधान है तथा प्रकृति विरही जनों के भावों को उद्दीप्त करने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करता है । घनानंद प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण प्रमुखता से करते हैं।

"लहकि लहकि आवै ज्यों ज्यों पुटवाई पौन।

दहकि दहकि त्यों त्यों तन ताँवरै तचै।"

उपालंभ भावना- घनानंद के प्रेम में उपालंभ भावना भी दिखाई देती है। उन्हें प्रिय से शिकायत है कि यदि उन्हें ऐसा ही निष्ठुर एवं निर्मम व्यवहार करना था तो पहले अपने रूप जाल में मेरे मन को क्यों बांध लिया तथा अमृत सने वचन बोलकर मेरे मन में काम भाव क्यों उत्पन्न किया।

"क्यों हँसि हेरि हटयो हियारा अरू क्योंहित के चित्र चाह बढाई।

काहे को बोले सुधा सनेबचैननि मैन निसेन चढ़ाई। "

घनानंद के प्रेम की एक अन्य विशेषता है उनकी नैसर्गिकता। वे स्वच्छंद प्रेम के कवि हैं उनका प्रेम बँधी बंधाई परिपाटी में ना होकर नैसर्गिक है। प्रिया भले ही निष्ठुर हो पर वह उसका बांट जोहते हैं। उनका कहना है-

चाहो अनचाहो जान प्यारे पै आनंदघन।

पीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।

इस प्रकार घनानंद का प्रेम अलौकिक है परंतु उसमें आलोकिता की झलक दिखाई देती है। उनके प्रेम में स्थूलता का अभाव है।

घनानंद हिंदी के उन विरले कवियों में हैं जिनका अनुभूति पक्ष जितना सशक्त है उतना ही सामर्थ्य उनके अभिव्यक्ति पक्ष में भी है गेयता उनकी कविता का सबसे सुंदर गुण है। घनानंद सहज सरल भाषा के कवि हैं। घनानंद की काव्य कला भी बहुत ही सुंदर है।

सौंदर्य चित्र- घनानंद प्रेम व सौंदर्य के कवि हैं अपनी प्रियतमा सुजान के सौंदर्य ने उन्हें मुग्ध कर दिया था। उसके अंग प्रत्यंग का मनोहारी चित्र वे अपनी कविता में अंकित करते हैं घनानंद के सौंदर्य चित्रण में अंग कांति लावणे का चित्रण सरस व मादक रूप में किया गया है।

"लट लोल कपोल करै कलकंठ बनी जलजावलि है।

अंग अंग तरंग उठे दुती की परि है मनो रुप अबै धरच्वै।। "

रस निरूपण- घनानंद के काव्य में श्रृंगार रस की प्रधानता है। श्रृंगार के दोनों ही पक्ष संयोग और वियोग का निरूपण उनके काव्य में प्रमुखता से हुआ है। घनानंद की प्रसिद्धि वियोग चित्रण के कारण अधिक रही है। श्रृंगार के संयोग पक्ष से भी वे सुंदर चित्रण करते हैं।

"मुख स्वेद कनी मुख चन्द बनी विधुरी अलकावलि भाँति भली।

मद जोबन रूप छकी आँवियाँ अवलोकन आरस रंग रली। "

वियोग श्रृंगार में तो घनानंद को विशिष्टता प्राप्त है। सुजान रूपी बादल अब ही कौंधते भी नहीं, ना जाने वे कहां चले गए इधर राम रूपी चातक उनके लिए तरस रहे हैं तड़प रहे हैं। जब तक वह आकर प्रेम वर्षा नहीं करते इन प्राणों को चैन कैसे मिलेगा।

भाव निरूपण- घनानंद की कविता विविध भावों का भंडार है। ये उनके भाव अत्यंत मार्मिक व हृदय द्वापक हैं यह भाव प्रेम प्रेरित हैं ।प्रिय के वियोग में व्याकुलता अनुभव करते हैं।

भाषा- घनानंद की भाषा सरस ब्रज भाषा है ।वे ठेठ ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग करते हैं। ब्रज भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था।उनकी भाषा में भाग निरूपण की अद्‌भुत क्षमता थी ।उनकी भाषा में उक्ति चमत्कार भी व्याप्त हैं ।उन्होंने काव्य में अलंकारों का भी प्रयोग किया है ।उन्हें सादृश्य मूलक अलंकार विशेष प्रिय है। इसके साथ साथ यमक, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा ,विरोधाभास ,प्रतीक आदि अलंकारों का प्रयोग है इनके काव्य में छंद योजना भी है ।छंद से काव्य में गेयता का समावेश होता है। काव्य में चारुता का विधान करने में छंद सर्वाधिक सहायता पहुंचाता है। इनकी कविताएं सीधे हृदय में उतरती हैं उनकी कलात्मक अभिरुचि प्रशंसनीय है।

रीतिमुक्त कवियों के काव्य का केंद्र भाव था न कि भाषा। भाषा केवल अभिव्यक्ति हेतु प्रयोग का माध्यम थी। इसके बावजूद घनानन्द का भाषायी प्रयोग देखने लायक है। हम यह कह सकते है कि इनकी ये रीतिमुक्त कविताएं अंदर बाहर दोनो से मुक्त और सौंदर्य से परिपूर्ण हैं।

पाठ्यांश

1. झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।

हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।

लट लोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।

अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहे मनौ रूप अबै धर च्वै।।

शब्दार्थ : झलकै = प्रकाशित होना, दिखना, चमकना। आनन = मुख। गौर = गोरा। छके = रस में लिप्त, भरे हुए, मस्त। रजत = शोभा। काननि = कानों को छूकर, कानों तक फैले हुए। छबि = रूप। उर = हृदय। कपोल = गाल। कलोल = खेल, हिलना। कल= सुंदर गला। जलजावली = दो लड़ियों वाली मोती की माला।

तरंग = लहर, आनंद। दुति = चमक, रोशनी। घर = पृथ्वी, धरती पर।

प्रसंग : नायिका के विशिष्ट सौंदर्य की प्रशंसा की गई है जिसमें मुख का वर्णन,आंखों का वर्णन, सुंदर देह का वर्णन, देह पर धारण किए गए आभूषणों का वर्णन तथा इन सब के समग्र प्रभाव से निर्मित उसके संपूर्ण सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

व्याख्या : प्रिया का अति सुंदर मुख गोरे रंग की आभा से झलक रहा है। यवन के रस से भरी हुई मस्त आंखे जो उसके कानों तक फैली हुई है शोभित हो रही है। कानों को छूती हुई आंखों का आशय बड़ी-बड़ी आंखों से है जो सुंदरता का पर्याय मानी जाती थी। प्रिया जब ऐसे सुंदर मुख से

हंसकर बोलती है ऐसा लगता है कि उसके वक्ष अर्थात ह्रदय पर सौंदर्य की उजली फूलों की वर्षा हो रही है। बोलने से जब उसका शरीर हिलता है तब उसकी चंचल लट यानी बाल कलोल (खेल) करने लग जाती हैं। उसके गले में पड़ी हुई दो लड़ीयों की मोतियों की माला भी हिलने लगती हैं। इस तरह शरीर के प्रत्येक अंग उनकी इस तरह हिलने से उसके शरीर के अंग-अंग में दुति यानी आनंद की तरंग(लहर) उठ रही है अर्थात मुख की हंसी से ऊंची हुई लहर ने पूरे शरीर को अपने प्रभाव में ले लिया है। जिसे देख कर ऐसा लग रहा है कि मानो उसके शरीर में भरा हुआ सौंदर्य अभी धरती पर चू पड़ेगा।

2.भोर तें साँझ लौ कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।

साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।

जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।

मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।

शब्दार्थ : भोर = सुबह। साँझ = शाम। कानन= वन। निहारति = देखते रहना। बावरी = पगली, विरह में बावली। हारति = थकती नहीं है। तारिन सो = आँखों से। ताकिबो = देखती है। इकतार = लगातार। न टारति = छोड़ती नहीं है। भावतो = पसंद आने वाला । दीठि = दिखाई पड़ना।सोहन = सामने, रूबरू। जोहन = ढूढ़ना। आरति = इच्छा।

प्रसंग : प्रेम निमग्न के विरह का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। नायिका सुबह से शाम तक और फिर शाम से सुबह तक केवल अपने प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करती है। जब कभी प्रिय सामने आते भी हैं तब आंसू के कारण उन्हें ठीक से देख नहीं पाती इस कारण प्रिय को देखने की लालसा हमेशा बनी रहती है।

व्याख्या : सखी का कथन है। वह नायिका के बारे में कहती है कि विरह में बावली नायिका सुबह से शाम तक एक टक जिधर उसके प्रिय चले गए हैं देखते यानी निहारती हुए थकती हारती नहीं है । अर्थात उधर वन की ओर प्रिय के गमन की दिशा की ओर एकटक देखती रहती है। सुबह से शाम के बीच यदि श्री कृष्णा नहीं दीखें तो वह शाम से सुबह पूरी रात तक अपनी आंखों से आकाश के तारों (तारिणी) को एकटक देखती रहती है। अर्थात जागते हुए आंखों आंखों में पूरी रात काट देती है । यदि कहीं प्रिय आनंदघन (कृष्ण) दिखाई पड़ते हैं तब उस अवसर पर आंखों से आंसू गिरने लगते हैं अर्थात प्रिय को देख पाने की प्रसन्नता में आंखों से आंसू बहने लगते हैं। आंखों से आंसू गिरने के कारण वह प्रिय को देख नहीं पाती आंखों से आंसू गिरने के साथ-साथ प्रिय को देखने का अवसर नहीं मिल पाता है। इस तरह उसकी आंखों में हमेशा मोहन को सामने देखने की लालसा बनी रहती है। कई बार कृष्ण के सामने होने के बावजूद प्रेम की अधिकता में निकलने वाले आंसुओं के कारण (खुशी के आंसुओं) वह प्रिय श्री कृष्ण को सामने देखकर भी नहीं देख पाती। प्रिय को देख पाने की लालसा संयोग एवं वियोग क्षणों में दोनों में ही बराबर बनी होती है।

3.अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।

घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

शब्दार्थ : सूधो = सीधा, सरल। सनेह = प्रेम। मारग = मार्ग, रास्ता। सयानाप = चतुराई। बाँक = टेढ़ापन। तजि = त्यागकर, छोड़कर। निसांक = निः शंक। एक तें = प्रिय के प्रेम की रेखा खिंच गई, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई रेखा नहीं खिंच सकती। पार्ट पढ़ना = ज्ञान प्राप्त करना, ढंग

सीखना। मन = हृदय, 40 सेर (अनाज नापने का पैमाना 1 मन~40 सेर के बराबर होता है 1 सेर ~ 1.25 किलो.)। छटांक = 1 सेर का 16वां हिस्सा।

प्रसंग : यहां प्रेम की सच्चे और सीधे मार्ग का वर्णन किया गया है। जिसमें प्रेमी से उल्लाहने के तौर पर कहा गया है कि प्रेम में चतुराई का कोई स्थान नहीं है। प्रेम में प्रिय से प्रेम करना ही एकमात्र निश्चय होता है। पर आपने जाने कौन सा ज्ञान सीख लिया है कि मन ले लेते हैं और बदले में कुछ नहीं देते है।

व्याख्या : नायिका नायक को प्रेम मार्ग की कठिनाइयों और सरलता को बताते हुए उलाहना देती है स्नेह का मार्ग इतना सीधा है कि उसमें किसी प्रकार के सयानेपन अर्थात सांसारिक व्यवहार ज्ञान और टेढ़ेपन (बाँक) के लिए कोई भी जगह नहीं है। प्रेम मार्ग पर ऐसे सच्चे प्रेमी ही चल सकते हैं जिन्होंने अपनेपन के बोध को पूरी तरह त्याग दिया है (जो अपने अहंकार से मुक्त हो गए हैं)। जो कपटी है अतः नि:शंक नहीं हैं वे प्रेममार्ग पर सीधे रास्ते पर चलते हुए संकोच करते हैं, झिझकते हैं। टेढ़ापन ऐसे लोगों का स्वभाव होता है, इसलिए प्रेम के इस सहज, सीधे मार्ग पर नहीं चल सकते।

3.5 सारांश

मीरा जो कि कृष्ण की भक्त थीं और घनानन्द, सुजान के प्रेमी। अगर हम काल को सामने रखकर देखे तो यह बात ठीक भी लगेगी। भक्तिकाल जिसके केंद्र में भक्ति थी और रीतिकाल जिसके केंद्र में प्रेम और श्रृंगार। अतः मीरा को भक्त कहना और घनानन्द को प्रेमी कहना ठीक भी लगता है। परंतु इन दोनों की रचनाओं को पढ़ने के उपरांत अगर हम इन दो कालों को कुछ देर के लिए अनदेखा कर इनकी रचनाओं के मूल भाव मे जायेंगे तो कई दफ़ा मीरा भक्त की अपेक्षा एक प्रेमिका के रुप में नज़र आएंगी और घनानंद का प्रेमी हृदय राधा और कृष्ण के भक्ति एवं साधना में कुछ खोता हुआ नज़र आयेगा। दोनों की ही रचनाओं में प्रेम और भक्ति का एक अद्भुत संगम हैं। यही विशेषता मीरा और घनानंद को एक रेख में लाकर घड़ा कर देती हैं।

3.6 मैथिलीशरण गुप्तः सामान्य परिचय

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल के पहले प्रमुख कवि हैं । इनके काव्य में द्विवेदीयुगीन साहित्य की समस्त प्रवृत्तियों का समावेश है । खड़ी बोली हिंदी का बहुत ही साफ-सुथरा रूप इनकी रचनाओं में मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना का मुखर स्वर विद्यमान है। भारतीय युवाओं के भीतर राष्ट्रीयता की भावना को जन्म देने में इनकी रचनाओं की बड़ी भूमिका है। बिहारी रीतिकाल के लोकप्रिय और महत्वपूर्ण कवि हैं । बिहारी रीतिकाल की परम्परा को पूरी तरह से अपने भीतर समाहित किये हुए हैं । बिहारी के दोहे गागर में सागर भरने वाले कवि के रूप में की जाती है। मैथिलीशरण गुप्त और बिहारी दोनों की रचनाओं का परिचय इस इकाई में समग्र रूप से कराया जाएगा ।

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल के महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के विशिष्ट रचनाकार हैं। इन्हें हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा का अग्रणी कवि माना जाता है। मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में चिरगाँव, झांसी (उत्तर प्रदेश) में और मृत्यु 1964 ई. में हुई। इनके पिता का नाम सेठ रामचरण और माता का नाम श्रीमती काशीबाई था। महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी में कई गौरव ग्रन्थों की रचना की। लेखन के आरम्भिक दिनों में इनकी रचनाएँ 'वैश्योपकारक' में छपती थी। उस समय महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में निकलने वाली 'सरस्वती' हिन्दी की प्रमुख और सर्वमान्य पत्रिका थी। 'सरस्वती' पत्रिका में रचना का प्रकाशित होना, गौरव की बात समझी जाती थी। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'रसिकेन्द्र' नाम से ब्रज भाषा में लिखी हुई अपनी एक कविता 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिए भेजी। कविता तो नहीं छपी किन्तु 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का पत्र इन्हें अवश्य प्राप्त हुआ। द्विवेदी जी के ही कहने पर मैथिलीशरण द्विवेदी ने इनकी 'हेमन्त' नामक कविता को आंशिक सुधार के बाद सरस्वती में प्रकाशित किया।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी काव्य-यात्रा और अपने लेखन के लिए महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन को स्वीकार करते हुए लिखा है कि –

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद।

महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।।

मैथिलीशरण गुप्त के लगभग 40 ग्रन्थ हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं-

1. जयद्रथ वध - 1910 ई.
2. भारत-भारती -1912 ई.
3. पंचवटी - 1925 ई.
4. झंकार - 1929 ई.
5. साकेत - 1931 ई.
6. यशोधरा - 1932 ई.
7. द्वापर - 1936 ई.
8. जय भारत - 1952 ई.
9. विष्णुप्रिया - 1957 ई.

इसके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त ने 'प्लासी का युद्ध', 'मेघनाथ वध', 'वृत्र संहार' जैसे महत्वपूर्ण अनूदि ग्रन्थों की भी रचना की है।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, नैतिक मूल्यों, सामाजिक जागृति, जन-जन का आध्यात्मिक नैतिक उत्थान, सामाजिक समरसता, देश भक्ति की व्यापक भावना, उदात्त मानवीय मूल्यों, समाज के सभी वर्गों के कल्याण की कामना तथा समकालीन राष्ट्रीय आंदोलन की पक्षधरता, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना, भारतीय इतिहास के स्वर्णकाल से जन-मन को परिचित कराने का कार्य किया है।

मैथिलीशरण गुप्त को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की गई। 1936 में 'साकेत' के लिए इन्हें हिन्दुस्तानी एकेडमी पुरस्कार और 1938 में मगलाचरण पारितोषिक प्राप्त हुआ। 1952 में मैथिलीशरण गुप्त राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए और 1954 में इन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया।

3.7 इकाई के उद्येश्य

इस इकाई में आप समझ सकेंगे –

- मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताओं और राष्ट्रीय चेतना की विशेषताओं को समझ पाएंगे ।
- रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी की काव्यगत विशेषताओं और बहुज्ञता का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे ।

3.8 मैथिलीशरण गुप्तः भारत की श्रेष्ठता

मैथलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना 'भारत भारती' गुलाम भारतवर्ष के युवाओं में जोश का संचार करने वाली कृति थी। यह गुप्तजी की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। प्रकाशन के कुछ ही वर्ष बाद इसकी हजारों प्रतियां बिक गयी थीं। 'भारत की श्रेष्ठता' पाठ 'भारत भारती' से ही लिया गया है।

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?

फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।

सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?

उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।

शब्दार्थः भू = पृथ्वी, **लोक** = संसार, जगत, **पुण्य** = पवित्र, **लीला-स्थल** = खेलने या अभिनय की जगह, **मनोहर** = मन को मोह लेने वाला, **गिरि** = पर्वत, **उत्कर्ष** = उन्नति, समृद्धि , श्रेष्ठता।

सन्दर्भः मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि है। 'भारत भारती' गुप्तजी की सर्वाधिक विख्यात और लोकप्रिय रचना है। प्रस्तुत पंक्तियाँ 'भारत भारती' के 'भारत की श्रेष्ठता' शीर्षक के अंतर्गत संकलित है। द्विवेदीजी गुलाम भारत के दौर में काव्य-रचना की ओर उन्मुख हुए। उनकी कविताओं में गुलामी की पीड़ा तथा उससे मुक्ति की तड़प के साथ-साथ भारत की प्राचीन महानता और उसकी वर्तमान दुर्दशा के बेहद सजीव चित्र मिलते हैं। भारत की श्रेष्ठता के गीत लिखकर गुप्तजी ने भारतीय युवाओं के भीतर राष्ट्रप्रेम की गंभीर भावना का उदय किया। इसी कारण उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से भी नवाजा गया।

प्रसंगः यहाँ मैथिलीशरण गुप्त प्रश्नवाचक शैली में भारत की महानता का बखान कर रहे हैं। भारत की प्राकृतिक सुषमा और उसका अतीत उसे दुनिया के श्रेष्ठतम राष्ट्र में जन्म लेने का अभिमान होता है।

व्याख्याः प्रस्तुत पंक्तियों में कवि लोगों से पूछता है कि इस पृथ्वी लोक का गौरव स्थल कहाँ है ! यानी इस संसार का कौन वह देश है जिसने अपनी सभ्यता और संस्कृति के द्वारा धरती के सम्मान को बढ़ाया है। दुनिया का इतिहास देखने पर स्पष्ट होता है कि वह देश भारतवर्ष ही है। कवि का अगला प्रश्न है कि संसार की प्रकृति का पवित्र स्थान कहाँ पर है ! क्या वह भारत ही नहीं है जिसमें बुद्ध, महावीर स्वामी, गाँधी जैसे महान पुरुष पैदा हुए ? जिन्होंने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना कर मनुष्यता को रचना भारतवर्ष में ही की थी। प्राचीन काल में इसे ब्रह्मावर्त प्रदेश कहा जाता था। भारत के भौगौलिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि भारत के उत्तरी हिस्से में मन को मोह लेने वाला हिमालय पर्वत फैला हुआ है और इसी देश में गंगा जैसी पवित्र नदी प्रवाहित होती है जिसके जल में कीड़े तक नहीं लगते। ऐसा देश ही दुनिया का गौरव हो सकता है। गुप्तजी अपने पाठकों से अगला प्रश्न पूछते हैं कि दुनिया में कौन ऐसा देश है जो ज्ञान, विज्ञान और सम्पदा के मामले में दुनिया में सबसे आगे हैं ? इस प्रश्न का स्वयं जवाब देते हुए वे कहते हैं कि वह देश ऋषियों की भूमि है, और वह देश कोई और नहीं बल्कि हमारा प्यारा भारतवर्ष है।

विशेषः

1. भारत के तत्कालीन और वर्तमान हालात को देखते हुए यह कहना बहुत कठिन है कि दुनिया का सबसे महान देश भारत है लेकिन यदि हम भारत का प्राचीन इतिहास पढ़े तो हमें इस बात पर जरा भी संदेह नहीं होगा। प्राचीन काल में हम ज्ञान, विज्ञान, शक्ति और सम्पदा सब में शीर्ष पर थे। यही कारण था कि भारत पर अनेकानेक आक्रमण हुए।
2. दुनिया में हर किसी को अपने देश पर गर्व होता है और वह अपनी जन्मभूमि को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ जगह मानता है। उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने अपनी इन्हीं भावनाओं को व्यक्त किया है।

3. हमालय और गंगा भारत की भौगौलिक श्रेष्ठता के साथ-साथ सांस्कृतिक महानता के भी प्रतीक हैं।

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भाण्डार है?
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।

शब्दार्थः वृद्ध = बूढ़ा, **सिरमौर** = सिर का मुकुट, **पुरातन** = प्राचीन, **भव-भूतियों** = संसार की विभूति, **विधि** = ईश्वर , **नर** = मनुष्य, **सृष्टि** = संसार।

सन्दर्भः उपरोक्त।

प्रसंगः मैथिलीशरण गुप्त ने इन पंक्तियों में भारत की प्राचीनता और महानता का बखान किया है। अब यह प्रमाणित हो चुका है कि दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता हड़प्पा और सबसे पुराना ग्रंथ ऋग्वेद है। इससे यह भी पता चलता है कि सृष्टि का विकास भारतवर्ष से ही हुआ था।

व्याख्याः कवि इन पंक्तियों में कह रहा है कि भारत दुनिया का सबसे वृद्ध अर्थात प्राचीन राष्ट्र है। वह प्रश्नवाचक शैली मे सबसे पूछता है कि क्या इससे प्राचीन राष्ट्र भी इस दुनिया में है। संसार का ज्ञात इतिहास तो इसी बात की पुष्टि करता है कि दुनिया का सर्वाधिक प्राचीन राष्ट्र भारत ही है। अपनी शानदार सास्कृतिक विरासत और प्राचीन उपलब्धियों के कारण इसे संसार का मुकुट कहा जाता है। मुकुट मनुष्य के सिर पर शोभित होता है। यह किसी व्यक्ति के गौरव का प्रतीक होता है। भारत दुनिया का मुकुट है। यह संसार के सम्मान का प्रतीक है। ईश्वर ने संसार की सभी विभूतियाँ इसी देश को दी हैं। यहाँ चार मौसम, अनेक नदियाँ, कई पर्वत और विशाल समतल जमीन है जो दुनिया के किसी देश में नहीं है। यही देखकर ईश्वर ने मानवीय सृष्टि का शुभारंभ इसी पवित्र भूमि से किया। कवि यह बात इस आधार पर कह रहा है क्योंकि दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता का अवशेष भारत में ही पाया गया है।

विशेषः कर्नल टॉड नामक एक पुरात्त्ववेता ने अपनी रचना में एक स्थान पर लिखा है कि तमाम अनुसंधानों से यह पता चलता है कि सृष्टि का आरंभ भारत से ही हुआ था।

इंजील और कुरान में भी आदम और हव्वा का अदन की खाड़ी से निकलकर भारतवर्ष में आने का संकेत मिलता है।

सर वाल्टर रेले नामक इतिहासकार ने अपने इतिहासग्रंथ में लिखा है कि जल-प्रलय के बाद भारत की भूमि पर ही पेड़ –पौधों और मनुष्यों की उत्पत्ति हुई। भारतीय मिथकों में इससे जुड़ी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ है।

यह पुण्यभूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी 'आर्य' है,

विद्या, कला-कौशल्य सबके जो प्रथम आचार्य हैं।

सन्तान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े,

पर चिह्न उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े।

शब्दार्थः पुण्यभूमि = पवित्र भूमि, **आर्य** = एक जाति, **अधोगति** = खराब अवस्था।

सन्दर्भः उपरोक्त।

प्रसंगः इन पंक्तियों में कवि ने भारत के प्राचीन गौरव और उसकी वर्तमान दुरावस्था का चित्र एक साथ खींचा है। ऐसा करके वह गुलाम भारत के लोगों को भारत के प्राचीन गौरव की याद दिलाकर उन्हें वर्तमान की गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

व्याख्याः मैथिलीशरण गुप्त कह रहे हैं कि भारत दुनिया भर में पवित्र भूमि के रूप में विख्यात है और इसके निवासियों को आर्य कहा जाता है। आर्यों ने अपनी योग्यता और महानता की छाप दुनिया भर में छोड़ी है। इन्होंने विद्या, कला और तकनीक के क्षेत्र में अपनी क्षमता का परिचय दिया है और इन क्षेत्रों में एक से एक महान काम किया है। वेदों के रचयिता आर्य थे। संगीत और कला जिस सामवेद से जन्मी उसके लेखक भी आर्य थे। विज्ञान के आदि आचार्य यार्यभट्ट, चिकित्सा विज्ञान के आचार्य चरक और सुश्रुत सभी आर्य थे । लेखिन आज इन आर्य पुत्रों की हालत बुरी है। आज ये अंग्रेजों की गुलामी और अन्याय सहने के लिए अभिशप्त हैं। यह बात दूसरी है कि आर्यों की महानता के कुछ प्रमाण आज भी दुनिया में बिखरे पड़े हैं।

विशेषः अंग्रेजों की प्रशासन नीति का एक बड़ा लक्ष्य भारत की श्रेष्ठता का खंडन था। उनका प्रयास था कि भारत को हर मोर्चे पर नीचा दिखाकर भारतीयों के भीतर हीन भावना पैदा कर दें। मैथिलीशरण गुप्त इन पंक्तियों के माध्यम से उनकी इस रणनीति का प्रतिवाद कर रहे हैं।

6.4.2 मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएँ

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के आधुनिक काल के महत्वपूर्ण कवि है। वे व्यापक अर्थों में भारत के राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के गायक हैं। मैथिलीशरण गुप्त का समग्र-रचना-कर्म अपने समय की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना से गहरे अर्थों में प्रभावित है और उसी से प्रेरणा भी प्राप्तत करता है। उनका लेखन हिन्दी नवजागरण का प्रमुख हिस्सा है। इस रूप में वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीरप्रसाद द्विवेदी के स्वाभाविक ही उत्तराधिकारी हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को स्पष्ट रूप से समाज-देश से जोड़ा। इससे साहित्य अपने समकालीन परिवेश से सम्बद्ध हुआ, साहित्य का विस्तार हुआ। समाज के विभिन्न मुद्दे साहित्स के विषय बनने लगे। मैथिलीशरण गुप्त ने सामाजिक विषमता, भेदभाव, आर्थिक विषमता, देश प्रेम, मातृभूमि प्रेम, स्वदेशी के प्रति आग्रह, शिक्षा , स्त्री शिक्षा, स्त्री सम्मान, मानवतावाद, नैतिकता, उच्च मानवीय मूल्य आदि विषयों पर बड़े पैमाने पर लेखन किया है। मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताओं को समझा जा सकता है-

मैथिलीशरण गुप्त भारतीयता के कवि थे। भारतीय जन मानस को भारत की दुर्दशा और वास्तविक स्थिति से परिचित कराने तथा उनमें राष्ट्रीयता की भावना को जगाने के लिए मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में भारतीय इतिहास के गौरवशाली स्वरूप का वर्णन किया है। उनका उद्देश्य यह रहा कि भारतीय जन मन अपने देश के इतिहास के स्वर्णकाल से परिचित हो आत्मगौरव की भावना के साथ समकालीन गुलामी के विरुद्ध खड़ा हो सके। इसके लिए गुप्त जी ने इतिहास, पौराणिक आख्यानों और रामायण, महाभारत की कथा लेकर उसका आधुनिक पाठ प्रस्तुत किया है। मैथिलीशरण गुप्त की मान्यता थी कि वर्तमान समय में गुलामी और अज्ञानता से मुक्ति पाने के लिए भारतीय इतिहास के प्राचीन सन्दर्भों से ही प्रेरणा मिल सकती है। इसीलिए वे 'भारत भारती' में कहते हैं कि-

ज्यों ज्यों प्रचुर प्राचीनता की खोज बढ़ती जाएगी।

त्यों त्यों हमारी उच्चता पर ओप चढ़ती जायेगी।

मैथिलीशरण गुप्त अतीत के प्रसंगों को महत्व देते हैं किन्तु वे इस बात के प्रति भी सचेत रहते हैं कि अतीत की-चीजों के प्रति लगाव कहीं अंधमोह न बन जाय। इसीलिए वे अतीत की कथा चनते हैं तो उसकी वर्तमान की आवश्यकता के अनुसार व्याख्या भी करते हैं। इस तरह वे परिवर्तन के पक्षधर के रूप में भी सामने आते हैं-

प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलोक है,

जैसी अवस्था हो, जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक हो।

इसका अर्थ है कि मैथिलीशरण गुप्त इतिहास को एक कागजी दस्तावेज मात्र न मानकर जाग्रत इतिहास बोध की तरह ग्रहण करते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय नवजागरण के समय चलने वाले तमाम सुधारवादी आंदोलनों के प्रभाव में पहली बार स्त्रियों की यथार्थ स्थिति की ओर लोगों का ध्यान गया। भारतीय समाज में स्त्रियाँ उपेक्षित रही हैं। वे कई प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक रूढ़ियों में फंसी रही है। जिससे उन्हें एक सम्मानजनक स्थान नहीं मिल सका। बाल विवाह, बेमेल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के कारण भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त खराब हो गयी थी। महात्मा गाँधी और दूसरे सामाजिक, राजनीतिक नेताओं ने स्त्रियों के लिए समान अधिकारों और सम्मानजनक जीवन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया जिसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। अपने समय में चल रही इन सारी बातों से प्रेरणा लेकर मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में नारी की मुक्ति के लिए मुखर होकर लिखा। उन्होने 'भारत भारती' में स्त्री की शोषित स्थिति पर दुःख व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

अनुकूल आद्या शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति है,
नर-जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्वति,
हा दैव ! नारी कैसी यहाँ दुर्गति है।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी व्यापक दृष्टि से साहित्य की अब तक उपेक्षित नायिकाओं पर भी लिखा । जिसका उदाहरण उनका काव्य 'संकेत' है। वे साकेत के माध्यम से रामकथा में एक नया मोड़ , रामकथा की एक नई व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। रामकथा में उपेक्षित रहीं लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को उन्होंने नायिका का दर्जा प्रदान किया। साकेत में लक्ष्मण उर्मिला के त्याग और महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं-

अवस-अबला तुम ? सकल बल वीरता,

विश्व की गम्भीरता, ध्रुव-धीरता।

मैथिलीशरण गुप्त स्त्री की वास्तविक स्थिति से परिचित थे। वे सम्पूर्ण नारी-जाति की व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।

इसके बावजूद वे नारी की गरिमा को स्वीकारते हुए कहते हैं- 'एक नहीं दो-दो मात्राएं नर से भारी नारी।' उनकी दृष्टि स्पष्ट है। वे स्त्री की हीन दशा के लिए पुरूष को जिम्मेवार मानते हैं। क्योंकि पुरूष ने ही नारी के अधिकारों का दमन किया है-

अधिकारों के दुरुपयोग का,

कौन कहाँ अधिकारी।

कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या,

अर्द्धांगिनी तुम्हारी।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में स्त्री के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। कुलवधू, गृहिणी, प्रिया, वीरांगना, विरहिणी, पतिव्रता, माँ, बहन, समाज-सेविका सभी रूपों में नारी चित्रित की गयी है। मैथिलीशरण गुप्त स्त्री के प्रत्येक रूप में उसके अस्तित्व की गरिमापूर्ण स्वीकृति के पक्षधर हैं।

मध्यकाल में साहित्य के केन्द्र में ईश्वर था किन्तु आधुनिक युग में वैज्ञानिक चेतना और तार्किकता के विकास ने आस्थावादी मान्यताओं और अलौकिक विश्वासों को प्रश्नांकित कर दिया। जिसके फलस्वरूप सोच विचार और चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य आया। एक नई दृष्टि बनी कि मनुष्य ही श्रेष्ठ है, सबकुछ उसके लिए ही है। मनुष्य स्वयं अपना भाग्य विधाता मानवतावादी दृष्टि की निर्मिति है । वे 'लीला' नामक काव्य में कहते हैं कि –

अमर जो न कर सके उसे नर कर सकते हैं,

व्रत साधन पर अमर भला कब मर सकते हैं?

यह मनुष्य और उसकी सामर्थ्य के प्रति अनन्य विश्वास की पंक्तियाँ हैं। इस विश्वास और सामर्थ्य के साथ मनुष्य अपने महानतम संकल्पों को पूरा करता रहा है। वे 'द्वापर' नामक काव्य में मनुष्य की इसी महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि-

सच पूछो तो ऐसा अद्भूत अपना यह मानव ही,

कभी देव बन जाता है तो और कभी दानव भी।

मैं कहता हूँ यदि मनुष्य ही बने मनुष्य हमारा,

तो कट जाए देव-दैत्यों का कलह-कलुष यह सारा।

देवता और दानव दोनों स्थितियं मनुष्य के भीतर ही हैं। अर्थात सृजन और विनाश दोनों के प्रति मनुष्य ही जवाबदेह हैं। मैथिलीशरण गुप्त का विश्वास है कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके कर्मो पर निर्भर हैं, उसके जाति, धर्म, लिंग या वर्ण पर नहीं । वे श्रेष्ठ मनुष्यता की कसौटी के निर्धारण में धर्म और जाति की भूमिका को खारिज करते हुए अपने ग्रन्थ 'गुरुकुल' में कहते हैं कि-

हिन्दू हो या मुसलमान हो नीच रहेगा फिर भी नीच,

मनुष्यता सबसे ऊपर है मान्य महीमण्डल के बीच।

मैथिलीशरण गुप्त के लेखन के आरम्भिक दिनों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीयता का उभार और सांस्कृतिक पुनरूत्थान का स्वर प्रमुखता से प्रसारित हो रहा था। उन्होंने आजादी की लड़ाई को समाज सुधार, जन जागरण, आर्थिक आजादी, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का निर्माण, मनुष्य मात्र की समानता, अछूतोद्धार, सत्याग्रह और अहिंसा से जोड़ दिया। गाँधी जी के इन प्रयासों को मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है। इसीलिए गुप्तजी को नवजागरण का वैचारिक प्रतिनिधि माना जाता है।

मैथिलीशरण गुप्त की अनेक रचनाओं में भारत की महिमा का गान उपलब्ध है। 'गुरुकुल' नामक ग्रन्थ में देश के गौरव उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि-

जिसके तीन ओर अर्णव है,

चौथी और हिमालय पीन

ऐसा देश दुर्ग पाकर भी

रह न सके हा ! हम स्वाधीन।

देश के प्रति यही लगाव और निष्ठा है जिसके कारण मैथिलीशरण गुप्त ने भारत का शोषण करने वाले अंग्रेजों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए 'लीला' नामक ग्रन्थ में कहा है कि-

पुण्य भूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे,

पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे।

'पीड़क पापी रह न सकेंगे' कहना एक कवि की अपने देश के प्रति महान आस्था का उदाहरण है। यह वही आस्था है जिसके तहत कोटि-कोटि जन अंग्रेजी सरकार के शोषण और दमन के विरुद्ध खड़े हो चुके थे। गुप्त जी विचारवान व्यक्ति एवं संचेत नागरिक थे। वे अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे आर्थिक एवं सांस्कृतिक शोषण से परिचित और चिंतित थे। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारत भारती' में अपनी यह चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी,

आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

मैथिलीशरण गुप्त जानते थे कि राष्ट्रीय भावना सामाजिक समानता और मर्यादा के बिना अधूरी रहेगी। इसीलिए वे समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, छुआछूत, गौरबराबरी आदि को समाज और राष्ट्र दोनों के लिए हानिकारक मानते थे। उनका विश्वास था कि बिना सामाजिक उत्थान के राष्ट्र का उत्थान असंभव है। अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'अनघ' में वे अछूतोद्धार के *सन्दर्भ में कहते हैं –*

इसका भी निर्णय हो जाय, नहीं अछूत मनुज क्या हाय।

करें अशुचिता सबकी दूर, उनसे घृणा करें सो क्रूर ।

जिनके बल पर खड़ा समाज, रहती है शुचिता की लाज,

उनका त्राण न करना, खेद ! है अपना ही मूलोच्छेद।

इसी तरह अछूतों के मंदिरों में प्रवेश को सामाजिक समता ही नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। अपने ग्रन्थ 'सिद्धराज' में वे कहते हैं कि-

मंदिरा का द्वार जो खुलेगा सबके लिए,

होगी तभी मेरी वहाँ विश्वभर भावना।

मैथिलीशरण गुप्त की कविता में राष्ट्रीय भावना और सामाजिक सुधार प्रमुख स्वर के रूप में मौजूद हैं।

काव्य भाषा के रूप में मैथिलीशरण गुप्त का सर्वाधिक योगदान खड़ी बोली के उत्कृष्ट स्वरूप का प्रयोग है। महावीरप्रसाद द्विवेदी के शिष्य परम्परा में होने के कारण मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली को अपनाया। उस समय हिन्दी की खड़ी बोली स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बन गयी थी। गुप्त जी का मानना था कि राष्ट्र भाषा के अभाव में राष्ट्र प्रेम अधूरा रह जायेगा। वे कविता के लिए हिन्दी को सर्वाधिक उपयुक्त मानते हुए कहते हैं कि 'मेरी अल्पबुद्धि तो यह कहती है कि अब खड़ी बोली में ही कविता होना सर्वथा इष्ट है। जिस हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिश करें उसी का साहित्य कविता से खाली पड़ा रहे यह कैसे दुःख की बात है। कविता साहित्य का प्राण है। जिस भाषा को साहित्य नहीं, वह भाषा कभी साहित्यवती होने का गर्व नहीं कर सकती और जिस भाषा को साहित्य का गर्व नहीं, वह राष्ट्र भाषा क्या खाक हो सकती है ? अतएव बोलचाल की भाषा में ही कविता होना इष्ट है।'

'बोलचाल की भाषा में ही कविता होना इष्ट है', यह मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भाषा के प्रति महत्वपूर्ण उक्ति है। मैथिलीशरण गुप्त की भाषा के माध्यम से सबसे पहले खड़ी बोली का साहित्यिक रूप सामने आया। वे अपनी भाषा में 'शब्द चयन, सूक्तियों के प्रयोग, तत्सम् शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग को लेकर अत्यंत सावधानी बरतते है। वे प्रसंग के अनुसार बोलचाल की सहज और सरल भाषा का भी प्रयोग यथास्थान करते थे। जिसके कारण उनके काव्य की सृजनात्मकता और संप्रेषणीयता अत्यधिक बढ़ जाती है।

मैथिलीशरण गुप्त ने मुख्यतः छन्दबद्ध रचनाएँ की है। उन्होंने अधिकांशतः लयात्मक और शास्त्रीय छन्दों का प्रयोग किया है। 'सिद्धराज' और 'विष्णुप्रिया' में मुक्त छन्द का भी प्रयोग किया है। 'यशोधरा' में प्रयुक्त रोला छन्द का एक उदाहरण इस प्रकार हैं-

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात।

पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्याघात।

तो वहीं 'रंग में भंग' से गीतिका छन्द का प्रयोग इस प्रकार है-

लोक शिक्षा के लिए अवतार जिसने था लिया।

निर्विकार निरीह होकर नर सदृश कौतुक किया।

इस तरह कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के प्रयोग को लेकर उनका उद्देश्य कभी कलावादी नहीं रहा, वे कविता के कथ और विषय पर मुख्य रूप से ध्यान देते थे, छन्द उनके लिए भावों के सम्प्रेषण के माध्यम भर थे। जो भाषा पर उनके अधिकार का उदाहरण है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के लिए महत्वपूर्ण रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना

भारतीय नवजागरण और सुधारवादी आंदोलनों ने भारतीय समाज और भारतीय मनीषा को व्यापक बदलाव और विभिन्न आधुनिक प्रवत्तियों के स्वागत के लिए तैयार किया जिसके परिणाम स्वरूप नये सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक मूल्यों का विकास हुआ। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य इन सभी नये मूल्यों की अभिव्यक्ति करता रहा है। मैथिलीशरण गुप्त अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय सवतंत्रता संग्राम के प्रति जनता की अभिरुचियों को प्रखर करने में विश्वास करते थे। उनकी प्रसिद्ध रचना 'भारत भारती' भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय चेतना को साहित्य के साथ-साथ जन-सामान्य में भी व्यापक स्वीकृति मिली। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं के माध्यम से गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुए आम जन को सम्बोधित कर उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्यक्ष भागीदारी के लिए आमंत्रित किया है। उनकी राष्ट्रीयता अपने समय के लगभग सभी प्रमुख वैचारिक सरणियों के प्रभाव में

निर्मित हुई है। उनकी कविता में महात्मा गाँधी के विचारों को लक्षित किया जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त की विशिष्ट राष्ट्रीय चेतना के कारण ही महात्मा गाँधी ने उन्हें 1936 में काशी में 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की थी।

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता जाति, धर्म और पंथ-संप्रदाय से ऊपर है। वे स्वयं वैष्णव संस्कारों में पले-बढ़े थे, और उस पर उनको अनन्य विश्वास था। इसके बावजूद वे स्वतंत्रता संग्राम की व्यापक सफलता के कारण भारत भूमि के विभिन्न धर्मों और मतों के महत्व को पूरे मन से स्वीकार करते हैं इसीलिए उन्होंने 'काबा' तथा 'कर्बला' जैसे खण्ड काव्यों की रचना की, तो वहीं सिक्ख पंथ के रचना भी की। सामाजिक समानता और समाज के प्रत्येक वर्ग के उत्थान के लिए 'स्वदेश संगीत' तथा 'सिद्धराज' जैसे ग्रन्थों का सृजन किया। भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा के प्रति अपनी अभिनव दृष्टि का परिचय 'साकेत' नामक ग्रन्थ में दिया।

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना केवल देश की राजनीतिक आजादी तक सीमित नहीं थी। उनकी राष्ट्रीयता देश की सामाजिक ,सांस्कृतिक और आर्थिक विषयों से गहरे अर्थों में सम्बद्ध होने के साथ-साथ मानवतावादी भी थी। वे 'भारत भारती' में भारतवासियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं-

शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो,

सम्भव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।

मैथिलीशरण गुप्त अपने देश की वर्तमान की हीन दशा से मुक्ति के लिए भारतीय इतिहास और अतीत के प्रेरक प्रसंगों को बार-बार दुहराते हैं। जिससे कि देशवासी अंग्रेजी द्वारा स्थापित हीनतर भारत-छवि से मुक्त होकर अतीत की अपनी श्रेष्ठता से प्ररेणा प्राप्त कर सकें। वे "भारत भारती" में कहते हैं कि-

इस देश को है दिनबन्धु ! आप फिर अपनाइए,

भगवान ! भारतवर्ष को फिर पुण्यभूमि बनाइए।

वरमंत्र जिसका मुक्ति था, परतंत्र पीड़ित है वही,

फिर वह परम पुरुषार्थ इसमें शीघ्र ही प्रकटाइए।

वे गाँधीजी से प्रभावित थे। जीवन में भी और अपनी रचनाओं में भी। उन्होंने अपनी रचनाओं में गाँधीजी के अहिंसात्मक आंदोलनों, सत्याग्रह आदि के प्रति अपार भरोसा व्यक्त किया है। वे गाँधीवादी उपायों के प्रति आश्वस्त थे-

अस्थिर किया टोप वालों को गाँधी टोपी वालों ने,

शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने।

अपनी प्रसिद्ध रचना 'किसान' में उन्होंने भारतीय किसानों की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है तो वहीं 'स्वदेश संगीत' में सत्याग्रह की प्रशंसा कर गाँधीवादी विचारों और मूल्यों के प्रति भरोसा व्यक्त किया है-

सत्याग्रह है कवच हमारा कर देखो कोई भी वार,

हार मानकर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार।

वे लोकतंत्र को अब तक की सबसे बड़ी गारन्टी मानते हैं। वे लोकतंत्र को मनुष्यता ही नहीं समूचे देश के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं। भाई-भतीजावाद, परिवारवाद, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, क्षेत्रवाद जैसी बुराइयों ने लोकतंत्र को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया है-

स्वयं श्रेष्ठ को चुन लेने में लोक आज अस्मर्थ,

आस-पास के स्वार्थों तक ही लोगों के व्यापार।

अपनी इसी राष्ट्रीय चेतना के कारण मैथिलीशरण गुप्त ने समाज के दीन-दुखी, उत्पीड़त वर्गों के लिए समान अधिकार और स्वतंत्रता की मांग करते हैं। अपनी जिन रचनाओं में उन्होंने पौराणिक कथाओं को लिया है, उनको भी वे सामाजिक समरसता और सबके उद्धार के लिए नये सन्दर्भ प्रदान करते हैं। रामकथा पर आधारित उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साकेत' के राम अपने पौराणिक व्यक्तित्व से मुक्त होकर समाज के पद्दलित, तिरस्कृत जनों और सामाजिक पदानुक्रम में सबसे निचले स्थान पर रहने वाले दलितों को उनके दुखों से मुक्ति दिलाने की महान भूमिका में उत्तर आते हैं। स्वयं राम ने अपने अवतार का प्रयोजन स्पष्ट किया है-

मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,

जो विवश विकल बलहीन दीन शापित हैं।

मैथिलीशरण गुप्त की दृष्टि यथार्थवादी है। वे अपनी ही नहीं सबकी अभिव्यक्ति के समर्थक हैं। उनकी मान्यता है कि सभी को अपनी बात कहने के लिए अवसर मिलना चाहिए किन्तु वे उस अवसर में भी मर्यादा के हिमायती हैं। वे नहीं चाहते कि कहने की स्वतंत्रता का प्रयोग मर्यादाहीन हो जाय। वे स्वतंत्रता के समर्थक हैं अराजकता के नहीं। वे कहते हैं कि-

जितने प्रवाह है बहें अवश्य बहें वे,

जिन मर्यादा में किन्तु सदैव रहें वे।

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चतेना कोरी भावुकता नहीं है उसमें समाजवादी तत्व भी विद्यमान है। उनकी मान्यता है कि संसाधनों का वितरण न्यायोचित ढंग से होना चाहिए। फल उसे ही मिलना चाहिए जो उसके निमित्त परिश्रम करता है। परिश्रम कोई और करे और फल कोई और प्राप्त करे यह श्रम का शोषण है। सबको अपने श्रम का उचित महत्व और मूल्य मिलना चाहिए-

जिसका श्रम होगा आय उसी की होगी,

होना ही होगा हमें तुम्हें उद्योगी।

मैथिलीशरण गुप्त एक सर्वसमावेशी राष्ट्र के निर्माण के लिए सभी धर्मों, सभी सम्प्रदायों और सभी संस्कृतियों के लोगों को आपसी कटुता भुलाकर एक साथ समवेत प्रयास करने की बात करते हैं। 'मातृ मंदिर' कविता में वे कहते हैं कि 'जाति, धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहाँ।' वे राष्ट्रीय चेतना को सबके लिए अपरिहार्य मानते हैं। उनके लिए सबसे ऊपर राष्ट्र है। किन्तु उनका राष्ट्र संकुचित दायरे में नहीं बल्कि व्यापक भाव-भूमि पर निर्मित हुआ है इसीलिए वे राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम में धर्म की भूमिका को सहयोगी मानते हुए कहते हैं कि –

'किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर , भू सागर,

एक नगर-सा बने विश्व, हम उसके नागर।'

मैथिलीशरण गुप्त के लिए राष्ट्रीयता और विश्व-प्रेम एक दूसरे के सहवर्ती हैं। सर्वधर्म समभाव उनकी राष्ट्रीय चेतना का आधार तत्व है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक

प्रखर और प्रगतिशील राष्ट्र का प्रस्ताव किया है जो समानता की भावना को सबसे जरूरी मानता हो। एक ऐसा राष्ट्र जिसमें सबको अपना सर्वोत्तम विकास करने का अवसर प्राप्त हो सके। मैथिलीशरण गुप्त जो अपेक्षा एक राष्ट्र से करते हैं वैसा ही या कहें कि उससे कुछ अधिक अपेक्षा उस राष्ट्र के निर्माण के लिए वहाँ के नागरिको से करते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त का सम्पूर्ण जीवन और सम्पूर्ण सृजन भारतीय नवजागरण, हिन्दी नवजागरण, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, अतीतगौरव और राष्ट्रीय चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

सारांश

बिहारी रीतिकाल के सर्वप्रिय कवि होने के साथ-साथ प्रतिनिधि कवि भी हैं । बिहारी की यह लोकप्रियता और काव्यगत प्रतिनिधित्व उनकी काव्यगत क्षमताओं और उनकी विशिष्ट प्रतिभा के कारण है। बिहारी का एक मात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है, जिस पर अब तक लगभग पचास से अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं। बिहारी की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण है उनके काव्य में कला और भाव का बहुत ही सुन्दर और संतुलित समन्वय । कहीं भी भाव और कला एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते बल्कि एक दूसरे के सहयोगी बन कर आते हैं । भाव और कला का ऐसा सुन्दर सम्बन्ध हिंदी साहित्य में तुलसीदास के अलावा अन्यत्र दुर्लभ है। दो पंक्तियों के दोहे में भाव का इतना सर्वोत्तम स्वरूप प्रस्तुत कर देना बिहारी की कलात्मक सफलता है। इसलिए कहा गया है कि बिहारी के दोहे नावक यानी शिकारी के बाणों की तरह हैं जोकि आकार में छोटे होते हुए भी लक्ष्य को गहराई से बोध देते हैं।

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगैं घाव करे गंभीर ।।

मैथिलीशरण गुप्त हिंदी के आधुनिक काल के महत्वपूर्ण कवि हैं। वे व्यापक अर्थों में भारत के राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के गायक हैं। मैथिलीशरण गुप्त का समग्र रचना-कर्म अपने समय की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना से गहरे अर्थों में प्रभावित है और उसी से प्रेरणा भी प्राप्त करता है। उनका लेखन हिंदी नवजागरण का प्रमुख हिस्सा है। इस रूप में वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीरप्रसाद द्विवेदी के स्वाभाविक ही उत्तराधिकारी हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने

अपनी कविताओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को स्पष्ट रूप से समाज-देश से जोड़ा। इससे साहित्य अपने समकालीन परिवेश से सम्बद्ध हुआ, साहित्य का विस्तार हुआ। समाज के विभिन्न मुद्दे साहित्य के विषय बनने लगे। मैथिलीशरण गुप्त ने सामाजिक विषमता, भेदभाव, आर्थिक विषमता, देश प्रेम, मातृभूमि प्रेम, स्वदेशी के प्रति आग्रह, शिक्षा, स्त्री शिक्षा, स्त्री सम्मान, मानवतावाद, नैतिकता, उच्च मानवीय मूल्य आदि विषयों पर बड़े पैमाने प

6.6 अपनी प्रगति जांचिए

1. मैथिलीशरण गुप्त का जन्म कब हुआ ?
(i) 1882
(ii) 1884
(iii) 1886
(iv) 1888

2. मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि की उपाधि किसने प्रदान की थी?
(i) महावीर प्रसाद द्विवेदी
(ii) हजारी प्रसाद द्विवेदी
(iii) महात्मा गांधी
(iv) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

3. बिहारी किस काल के कवि हैं ?
(i) आदिकाल
(ii) भक्तिकाल
(iii)रीतिकाल
(iv) आधुनिक काल

4. बिहारी किस राजा के दरबारी कवि थे ?
(i) राजा जयसिंह

मुख्य शब्दावली

गिर – पर्वत

उत्कर्ष – समृद्धि, श्रेष्ठता

भू – पृथ्वी

लजात – संकोच

परागु – पराग (फूलों में मौजूद कण)

उजास – उजाला

अपार – अनन्त

'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर :

1. 1886
2. महात्मा गांधी
3. रीतिकाल
4. राजा जयसिंह
5. मैथिलीशरण गुप्त

अभ्यास हेतु प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

निम्न पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए :

1. भोर ते साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
   साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति ।
2. जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
   मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।
3. यह पुण्यभूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी 'आर्य' हैं,
   विद्या, कला-कौशल सबके जो प्रथम आचार्य हैं।
   सन्तान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े,
   पर चिह्न उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े ।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. बिहारी की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।
2. राष्ट्र कवि के रूप में मैथिलीशरण गुप्त का मूल्यांकन कीजिए ।
3. मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएं बताइए ।
4. बिहारी के काव्य की समीक्षा कीजिए ।

6.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. संसार चन्द्र - बिहारी संक्षिप्त
2. 'बिहारी' : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, संजय बुक सेंटर, वाराणसी ।

इकाई 4 : व्याकरण

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 लिंग
4.3 कारक
4.4 वचन
4.5 काल
4.6 वाक्य शुद्धि
4.7 शब्द-अर्थ सम्बन्ध
4.8 विलोम शब्द
4.9 पर्यायवाची शब्द
4.10 मुहावरा
4.11 लोकोक्तियाँ (कहावतें)
4.12 सारांश
4.13 मुख्य शब्दावली
4.14 'अपनी प्रगति जाँचिये' के उत्तर
7.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

व्याकरण शब्द वि+आ+कृ-धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से बना है | जिसका अर्थ है "व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन" अर्थात् इसके द्वारा शब्दार्थ सम्बन्ध की विवेचना होती है| व्याकरण की सहायता से हम शब्द रचना, वाक्य रचना तथा भाषा व्यवस्था सम्बन्धी नियमों का ज्ञान प्राप्त करते हैं | वैयाकरणों ने भारतीय व्याकरण परंपरा में उदाहरण एवं नियम दोनों को ही व्याकरण माना है| 'लक्ष्य लक्षणे व्याकरणम्' अर्थात

'शब्द' या 'पद' आदि 'लक्ष्य' कहलाते हैं उनके स्वरूप को स्पष्ट करने वाले नियम 'लक्षण' कहलाते हैं | 'लक्षण' या उदाहरण भाषा में विद्यमान हैं | इस विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि भाषा के स्वरूप अथवा भाषा की प्रकृति को स्पष्ट करने वाले नियम व्याकरण कहलाते हैं | ये नियम या व्याकरण शब्दों या भाषा का निर्माण नहीं करते अपितु उनके स्वरूप या प्रकृति को स्पष्ट करते हैं तथा उन्हें अपना स्वरूप अव्यवस्थित रूप से बदलने या बिगाड़ने से रोकते हैं | इसीलिए महान वैयाकरण और भाषा-विदों ने व्याकरण को शब्दों का अनुशासन भी कहा है|

व्याकरण भाषा के शब्दों को गढ़ता नहीं है बल्कि उसके शुद्ध रूप की रक्षा करता है| दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व पतंजलि ने इसको अपनी प्रसिद्ध कृति 'महाभाष्य' लिखा - "जैसे लोग कुम्हार के घर जा कर कहते हैं कि मेरे घर में मांगलिक कार्य है अतः तुम मेरे लिए 'इतने' घड़े बनाकर देना, ऐसे कोई भी आदमी वैयाकरण के पास जाकर नहीं कहता कि मुझे शब्दों की आवश्यकता है; तुम मेरे लिए इतने शब्दों की रचना करके रखना| शब्द तो भाषा में स्वतः विद्यमान होते हैं व्याकरण उनको अनुशासित एवं नियमबद्ध करता है |"

मनुष्य बचपन से ही अनुकरण द्वारा बिना व्याकरण जाने भाषा का व्यवहार सीखता है| किन्तु व्याकरण ज्ञान से भाषा के शुद्ध, परिष्कृत एवं मानक रूप को जानकर भविष्य में वह आत्मविश्वास के साथ भाषा प्रयोग में दक्ष हो जाता है | प्रत्येक भाषा के अपने नियम होते हैं और वे नियम उस भाषा को शुद्ध बोलना और लिखना सिखाते हैं इन्ही नियमों का अध्ययन व्याकरण के अंतर्गत किया जाता है | व्याकरण भाषा को विशुद्ध रूप से बोलने लिखने तथा समझने के लिए व्यवस्थित नियमों एवं पद्धतियों का विधान करने वाला शास्त्र है | व्यवस्थित नियमों एवं पद्धतियों के आधार पर ही किसी भी भाषा के शुद्ध एवं अशुद्ध रूप को निर्धारित किया जाता है | व्याकरण के माध्यम से किसी भी भाषा के उच्चारण, लेखन और पठन-पाठन के शुद्ध रूप प्राप्त होते हैं | व्याकरण भाषा के सभी स्वरूपों को व्यवस्थित करने का कार्य भी करता है जिससे वर्ण-विचार के अंतर्गत ध्वनियों और वर्णों ; शब्द-विचार के अंतर्गत शब्दों के विविध पक्षों सम्बन्धी नियमों और वाक्य विचार के अंतर्गत वाक्य सम्बन्धी विभिन्न स्थितियों एवं छंद विचार में साहित्य सृजन के अनुशासन पर विचार करता है साथ ही भाषा के अंग-प्रत्यंग का विश्लेषण एवं विवेचन भी करता है|

इस इकाई में लिंग, कारक, वचन, काल, वाक्य-शुद्धि, शब्द-अर्थ सम्बन्ध, विलोम एवं पर्यायवाची शब्दों पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है | यहाँ जो उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं उससे विषय को समझना और आसान हो जायेगा | लोकोक्तियों और मुहावरों के अध्ययन से अपनी बात को आकर्षक एवं रोचक ढंग से रखने में आप अपने को अत्यंत सहज महसूस करेंगे | कहावतों (लोकोक्तियाँ) मुहावरों के अंतर को सरलता से समझने में आप सफल होंगे | जिसके माध्यम से आप अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषणीयता हेतु चारुता उत्पन्न करने में सक्षम हो सकेंगे |

4.1 इकाई के उद्देश्य

* व्याकरण के अध्ययन से हिंदी भाषा में लिंग विचार को समझ सकेंगे |
* हिंदी भाषा में कारक की महत्ता को जान पाएंगे |
* भाषा में वचन का सही प्रयोग कर पाएंगे |
* काल को विधिवत परिभाषित कर पाएंगे |
* व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध शब्दों तथा वाक्यों को शुद्ध कर पाएंगे |
* विलोम शब्द को ज्ञात करने में सफल हो पाएंगे |
* हिंदी के पर्यायवाची शब्दों से परिचित हो पाएंगे |
* भाषा को आकर्षक एवं रोचक बनाने हेतु मुहावरे और लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग करने में सक्षम हो सकेंगे |

4.2 लिंग

संस्कृत शब्द लिंग का अर्थ है - चिह्न । 'लिंग' शब्द के उस चिह्न को कहते हैं, जिससे वस्तु के पुरुष या स्त्री होने की कल्पना हो। लिंग के कारण संज्ञा, विशेषण और क्रिया के रूप में परिवर्तन होता है। हिन्दी में लिंग दो प्रकार के होते हैं - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। संस्कृत में एक और लिंग है जिसे नपुंसक लिंग कहते है। इस लिंग को हिन्दी में स्वीकार नहीं किया गया।

1. **पुल्लिंग :** पुल्लिंग संज्ञा के उस रूप को कहते हैं, जिससे उसके पुरुष होने का ज्ञान हो। जैसे - राम, श्याम, लक्ष्मण, घोड़ा, हाथी आदि।
2. **स्त्रीलिंग :** 'स्त्रीलिंग' संज्ञा के उस रूप को कहते हैं, जिससे उसके स्त्री होने का ज्ञान हो। जैसे- लड़की, बकरी, गाय, धरती आदि।

लिंग निर्णय :-

लिंग का निर्णय हिन्दी में मुश्किल कार्य है। इसका कोई स्थायी और निश्चित नियम नहीं है। हिन्दी में लिंग का निर्णय मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है - 1) शब्द के अर्थ के आधार पर 2) उसके रूप के आधार पर

प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के आधार पर और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप और व्यवहार के आधार पर तय होता है।

प्राणिवाचक शब्दों के लिंग के निर्णय :

जिन प्राणिवाचक संज्ञाओं से जोड़ों का ज्ञान होता है, उनमें पुरुष बोधक संज्ञाएँ पुल्लिंग और स्त्री बोधक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं। पुरुष, घोड़ा, मोर, शेर आदि पुलिंग हैं तो स्त्री, घोड़ी, गाय, मोरनी, शेरनी आदि स्त्रीलिंग हैं।

मनुष्य से भिन्न प्राणिवाचक संज्ञाओं से दोनों जातियों का बोध होता है। व्यवहार के अनुसार वे या तो हमेशा पुल्लिंग होते हैं या फिर स्त्रीलिंग। जैसे - पक्षी, चीता, केंचुआ, खटमल, भेड़िया आदि पुलिंग हैं तो कोयल, गिलहरी, तितली, चील, आदि स्त्रीलिंग।

अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग का निर्णय :

अप्राणिवाचक को जानना कठिन होता है। इसका लिंग व्यवहार के आधार पर तय होता है। अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ और रूप से जानना कठिन है क्योंकि एक ही अर्थ के अलग-अलग शब्द, अलग-अलग लिंग के हैं। जैसे - नेत्र पुल्लिंग है तो आँख स्त्रीलिंग। देखा जा सकता है दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है किन्तु लिंग में भिन्नता है ठीक उसी प्रकार एक ही अंत के शब्दों में भी लिंग की भिन्नता होती है, जैसे - आलू पुलिंग है तो बालू स्त्रीलिंग।

कुछ अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार पुल्लिंग होते हैं। जैसे -

- शरीर के अवययों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे - मुँह, कान, हाथ, पाँव आदि।

- धातुओं के नाम जैसे - सोना, पीतल, लोहा, टीन, आदि।
- पेड़ों के नाम जैसे - पीपल, शीशम, अशोक आदि।
- अनाजों के नाम जैसे - गेहूँ, चावल, मटर, चना आदि।
- ग्रहों के नाम जैसे - सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि।

  अपवाद - पृथ्वी।

कुछ अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे -

- नदियों के नाम जैसे - गंगा, यमुना, नर्मदा आदि।

  अपवाद - सिंधु, ब्रह्मपुत्र।
- तिथियों के नाम जैसे - तीज, चौध आदि।
- भोजनों के नाम जैसे - पूरी, खीर, रोटी, खिंचड़ी आदि।

  अपवाद - भात, हलुआ आदि।

संज्ञा के आधार पर लिंग-निर्णय :

संज्ञा के आधार पर भी हिन्दी में लिंग निर्णय होते है। इसके बहुत अपवाद भी होते है। हिन्दी भाषा में संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी के शब्द भी होते हैं जिनके लिए नियम में भिन्नता होती है। संज्ञा के आधार पर पुलिंग और स्त्रीलिंग का निर्णय करने के कुछ नियम अग्रांकित प्रस्तुत है -

पुल्लिंग शब्द :

1) संस्कृत के 'अ' प्रत्ययांत शब्द प्रायः पुल्लिंग होते हैं। जैसे - अध्याय, अनल, आकार, उपहार, उपाय, अन्याय आदि।
2) जिन संज्ञाओं के अंत मे 'त्र' हो। जैसे - गोत्र, नेत्र, चित्र, पात्र, मित्र, शास्त्र, क्षेत्र, चरित्र, अस्त्र, शस्त्र आदि।
3) जिन संज्ञाओं के अंत में 'ज' हो। जैसे - अनुज, जलज, सरोज, पिंडज आदि।
4) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में त्व, त्य, व, र्य हो। जैसे - महत्व, सतीत्व, कृत्य, नृत्य, गौरव, कार्य, धैर्य, माधुर्य आदि।
5) उर्दू भाषा के जिन शब्दों के अंत में 'आब', 'आर' या 'आन' हो। जैसे - गुलाब, हिसाब, बाजार, इनकार, मकान, समान आदि।

स्त्रीलिंग शब्द :

1) जिन शब्दों के अंत में 'आ' प्रत्यय हों, वे प्रायः हिन्दी में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं। जैसे - आज्ञा, कन्या, काया, कृपा, घटना, दवा, वेदना, विधा, याचना, संवेदना, सहायता, सीमा, सेना, सेवा, रक्षा, माया, विद्या आदि।
2) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में 'ता' हो, वे स्त्रीलिंग होती हैं। जैसे - गुरुता, जड़ता, पशुता, ममता, महत्ता, विनम्रता, एकता, समता, सुंदरता आदि।
3) ईकारान्त संज्ञाएँ। जैसे - नदी, चिट्ठी, टोपी आदि।

अपवाद - पानी, मोती, घी, दही आदि।

4) कृदंत की वे संज्ञाएँ जिनके अंत मे 'न' और 'अ' हो। जैसे - रहन, सहन, सूजन, पहचान, मार, समझ, चमक, पुकार, दौड़ आदि।
5) उर्दू के जिन शब्दों के अंत में 'श', 'त' और 'ह' हो। जैसे - कशिश, लाश, कीमत, दस्तखत, राह, सलाह आदि।

लिंग निर्णय की समस्या :

हिन्दी व्याकरण में जहाँ-जहाँ काठिन्य का आरोप किया गया है, उनमें लिंग का प्रथम स्थान है। लिंग निर्णय अभ्यास और स्मरण की अपेक्षा रखता है। अहिंदी भाषी लोगों के लिए लिंग चयन करना हमेशा से कठिन कार्य रहा है। उदाहरण के लिए अरुणाचल प्रदेश जैसे अहिन्दी राज्य को लें जहाँ लिंग निर्णय एक समस्या है। अरुणाचल के लोगों ने 'जाता है' और 'जाती है' के लिए 'जाएगा' शब्द प्रयोग करते हैं। यह शब्द पुरुष और स्त्री दोनों के लिए होता है। अरुणाचल में अरुणाचली व्यक्ति द्वारा इस तरह के शब्दों का प्रयोग करना गलत नहीं माना जाता।

4.3 कारक

संज्ञा अथवा सर्वनाम का वह रूप, जो वाक्य के अन्य शब्दों, विशेषतः क्रिया से अपना संबंध प्रकट करता है, 'कारक' कहा जाता है। प्रत्येक पूर्ण वाक्य में संज्ञाओं तथा सर्वनामों का मुख्य रूप से क्रियाओं के साथ और गौण रूप से आपस में भी संबंध रहता है। जैसे - 'राम ने रावण को मारा'। उपर्युक्त वाक्य में 'राम ने', 'रावण को' संज्ञाओं के रूपान्तरण हैं जिनके द्वारा इन संज्ञाओं का संबंध 'मारा' क्रिया के साथ सूचित होता है।

संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय कारक को सूचित करने के लिए लगता है उसे विभक्ति कहते हैं। ऊपर वाक्य में 'राम ने' और 'रावण को' कारक को सूचित करने के लिए 'ने' और 'को' प्रत्यय लगे हैं। अतः 'ने' और 'को' विभक्ति हैं।

कारक के भेद :

हिन्दी में आठ कारक हैं। इन कारकों के बोध के लिए प्रयुक्त होने वाले चिह्नों को विभक्ति कहते हैं। कारक चिह्नों को 'प्रत्यय' तथा 'परसर्ग' भी कहते हैं। कारक के निम्न लिखित आठ भेद हैं -

कारक	विभक्ति
कर्ता कारक (Nominative Case)	ने
कर्म कारक (Accusative Case)	को
करण कारक (Instrumental Case)	से
संप्रदान कारक (Dative Case)	को, के लिए
अपादान कारक (Ablative Case)	से
संबंध कारक (Genitive Case)	का, के, की
अधिकरण कारक (Locative Case)	में, पर
सम्बोधन कारक (Vocative Case)	हे, अजी, अहो, अरे

हिन्दी में विभक्तियों के प्रयोग के नियम :

1) विभक्तियों का प्रयोग शब्दों के बीच के संबंध को प्रकट करना होता है। जैसे ने, का, पर, से आदि।
2) संज्ञा या सर्वनाम के साथ विभक्ति आती है। जैसे - राम ने खाना खाया।
3) दो प्रकार से संज्ञा और सर्वनाम का जुड़ाव होता है। यह दो प्रकार हैं - विश्लिष्ट और संश्लिष्ट। जो विभक्ति संज्ञा के साथ आती है वो विश्लिष्ट है। वे संज्ञा से अलग रहती हैं, जैसे - राम ने, मोहन को। और जो सर्वनाम के साथ जुड़ जाती हैं वह संश्लिष्ट हैं। जैसे - तुमने, मैंने।

हिन्दी के कारक

➢ **कर्ता कारक :-** 'कर्ता' का अर्थ है करने वाला। जो कोई क्रिया करता है, उसे क्रिया का कर्ता कहते हैं। जैसे - 'राम पढ़ता है'। यहाँ पढ़ने वाला 'राम' है, अतः वह 'पढ़ना' क्रिया का कर्ता है।

'ने' चिन्ह का प्रयोग :

1) कर्तृवाच्य में बोलना, भूलना, लाना, खाना आदि कुछ सकर्मक क्रियाओं को छोड़कर अन्य सकर्मक क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, पूर्ण तथा संदिग्ध भूत में कर्ता के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे -

सामान्य भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी।

आसन्न भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी है।

पूर्ण भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी थी।

संदिग्ध भूत - गीता ने पुस्तक पढ़ी होगी।

2) जानना, लाना, पुकारना आदि के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग कभी होता है, कभी नहीं होता। जैसे - मैंने जाना - मैं जाना, मैंने पुकारा - मैं पुकारा।

3) अकर्मक क्रिया जब सकर्मक क्रिया हो जाती है, तब 'ने' का प्रयोग होता है। जैसे - उसने लड़ाई लड़ी।

4) जब संयुक्त क्रिया के दोनों खंड सकर्मक हों, तब 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - उसने खाना खा लिया।

5) संयुक्त क्रिया का यदि अंतिम खंड अकर्मक हो, तो 'ने' का प्रयोग नहीं होता। जैसे - मैं खा चुका।

6) संयुक्त क्रिया का अंतिम खंड यदि सकर्मक हो, तो 'ने' का प्रयोग होता है। जैसे - उसने रो दिया।

➢ **कर्म कारक :-** जिस वस्तु पर कर्ता की क्रिया का फल पड़े, उसे 'कर्म कारक' कहते हैं। जैसे - 'राम ने मोहन को पीटा'। इस वाक्य में करता राम के पीटने की क्रिया का फल मोहन पर पड़ता है, इसलिए यहाँ मोहन कर्म है। कर्म कारक का चिह्न 'को' है।

'को' चिन्ह का प्रयोग :

1) सकर्मक क्रिया का फल जिस पर पड़ता है, वह कर्म है और उसके बाद 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - माँ बच्चे को पढ़ाती है।
2) समय की सूचना देने में 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - आज चार बजे शाम को मंत्री जी का भाषण होगा।
3) अधिकारसूचक तथा व्यापारसूचक कर्तृवाचक कर्म के साथ 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे- मोहन को बुलाओ। गीता को पढ़ने दो।
4) मिलना, रुकना, होना, पढ़ना, जाना आदि क्रियाओं के साथ 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - मुझको जाना चाहिए, तुमको रुकना होगा, मुझे मिलना चाहिए आदि।
5) 'मारना' क्रिया का अर्थ जब 'पीटना' हो, तब तो कर्म के साथ 'को' चिह्न लगता है, किन्तु जब इसका अर्थ 'शिकार या हत्या करना' हो तो 'को' चिह्न नहीं लगता। जैसे- उसने चोर को पीटा। शिकारी ने हिरण मारा।
6) 'होना' क्रिया का प्रयोग यदि अस्तित्व के अर्थ में हो तो कर्म में 'को' के जगह 'के' चिह्न लगता है। जैसे - दशरथ के चार पुत्र हैं।

- **करण कारक :-** जो क्रिया की सिद्धि में साधन के रूप में काम आए, उसे 'करण कारक' कहते हैं। इसका चिह्न 'से' है। जैसे - 'तुम कलम से लिखे'। यहाँ लेखन क्रिया का साधन 'कलम' है, अतः इसे करण कारक कहेंगे। करण का 'से' चिह्न कहीं-कहीं लुप्त रहता है। जैसे - आँखों देखा, कानों सुना। अर्थात आँखों से देखना, कानों से सुना आदि।

'से' चिह्न का प्रयोग :

1) करण कारक में 'से' विभक्ति साधन के अर्थ की ओर संकेत करती है। जैसे - उसने पेंसिल से चित्र बनाया।
2) कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्ता के साथ 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - उससे रोटी खायी नहीं जाती।
3) प्रेरित कर्ता में 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - शिक्षक छात्रों से पढ़वाते हैं।
4) क्रिया करने की पद्धति में। जैसे - वह धीरे से बोला।
5) दिशावाचक शब्दों के योग में। जैसे - मैं पूरब से आया।
6) समय और स्थान की दूरी द्योतित करने में, जैसे - आज से चार दिन पहले की बात है।

7) वस्तु-स्थिति का ज्ञान कराने के लिए क्रियार्थक संज्ञाओं में। जैसे - पढ़ने से पुस्तक नीरस मालूम पड़ी।

- **संप्रदान कारक :-** जिसके लिए कुछ किया जाये या जिसे कुछ दिया जाये, उसे 'संप्रदान कारक' कहते हैं। इसके मुख्य चिह्न 'को' तथा 'के लिए' है। जैसे 'राम ने मोहन को आम दी'। इस वाक्य में मोहन संप्रदान है, क्योंकि आम उसे ही दी गयी है। इसी प्रकार 'कृष्ण ने राधा के लिए फल लाये'। इस वाक्य में राधा संप्रदान है, क्योंकि फल उसके लिए लाया गया।

  द्रष्टव्य - कर्म और संप्रदान दोनों कारकों में 'को' विभक्ति का प्रयोग होता है, किन्तु दोनों के अर्थ भिन्न हैं। संप्रदान का 'को' अव्यय के स्थान पर या उसके अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि कर्म के 'को' का अर्थ से कोई संबंध नहीं।

- **अपादान कारक :-** जिससे कोई वस्तु अलग हो उसे 'अपादान कारक' कहते हैं। इसका चिह्न 'से' है। जैसे - 'पेड़ से पत्ता गिरा'। 'मोहन घर से आता है'। इन वाक्यों में 'पेड़' और 'घर' अपादान है, क्योंकि गिरते समय पत्ता पेड़ से अलग होता है और आते समय मोहन अपने घर से।

द्रष्टव्य - अपादान और करण दोनों कारकों में 'से' चिह्न है, किन्तु दोनों में अर्थ की दृष्टि से बहुत अंतर है। करण का 'से' साधन का अर्थ प्रकट करता है, जबकि अपादान का 'से' अलग होने का अर्थ प्रकट करता है ।

- **संबंध कारक :-** जिस संज्ञा या सर्वनाम से किसी दूसरे शब्द का संबंध का पता चले, उसे 'संबंध कारक' कहते हैं। इसकी विभक्त 'का', 'के', 'की' है। जैसे - उसका घर आ गया। राम के पास चार कलम है। मोहन की गाय चरती है।

  'उसका घर' से घर का संबंध उससे है। अतः 'उसका' को संबंध कारक कहते हैं।

द्रष्टव्य - अन्य कारकों का संबंध मुख्य रूप से क्रिया के साथ होता है और साधारण रूप से अन्य संज्ञाओं के साथ, परंतु संबंध कारक का संबंध मुख्य रूप से संज्ञाओं के साथ ही होता है। यही कारण है, इस कारक का लिंग-वचन संबंधी के अनुसार होता है, जबकि अन्य कारकों के साथ ऐसी बात नहीं है।

➢ **अधिकरण कारक :-** जिससे क्रिया के आधार का ज्ञान होता है, उसे 'अधिकरण कारक' कहते हैं। जैसे - 'कौआ पेड़ पर बैठा है'। इस वाक्य में 'पेड़' अधिकरण कारक है। वह कौए के बैठने के लिए आधार का काम करता है।

'में' तथा 'पर' चिह्न का प्रयोग :

1) आधार के अर्थ में 'में' तथा 'पर' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे - घर में मोहन है। पेड़ पर पक्षी है।
2) समय, दूरी तथा अवधि के अर्थ में। जैसे -आठ दिनो में आऊँगा। यहाँ से एक मील पर बाज़ार है।

➢ **सम्बोधन कारक :-** संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारने या सचेत करने आदि का भाव मालूम हो, उसे 'सम्बोधन कारक' कहते हैं। इसके विभक्ति 'हे', 'अरे', 'अजी' है। जैसे - अरे, श्याम तुम्हें क्या हो गया? इस वाक्य में 'अरे श्याम' सम्बोधन कारक है, क्योंकि इस पद द्वारा श्याम को पुकारा जा रहा है।

4.4 वचन

'वचन' का अर्थ है 'बोली', किन्तु व्याकरण में 'वचन' का अर्थ है 'संख्या'। जैसे - 'लड़का आता है' और 'लड़के आते हैं' इन दोनों वाक्यों में पहली बार 'लड़का' शब्द का एकवचन में प्रयोग हुआ है और दूसरी बार 'लड़के' का बहुवचन में। पहले वाक्य में 'लड़का' शब्द से ज्ञात होता है कि कोई एक ही लड़का है, परंतु दूसरे वाक्य में 'लड़के' से लगता है कि आनेवाले लड़के कई हैं।

हिन्दी में वचन दो हैं - एकवचन और बहुवचन।

एकवचन (Singular Number) - जो एक संज्ञा का ज्ञान कराता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे - लड़का, गाय, लड़की, कपड़ा, नदी आदि।

बहुवचन (Plural Number) - जो एक से अधिक संख्या का ज्ञान कराता है, उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे - लड़के, गाये, लड़कियाँ, कपड़े, नदियाँ आदि।

बहुवचन के प्रयोगों को दो भागों में बाँटा गया है - विभक्तिसहित और विभक्तिरहित। अर्थात् वाक्य में कभी विभक्ति का प्रयोग होता है कभी नहीं। जैसे - 'बालक खेलते हैं' वाक्य में 'बालक' संज्ञा के साथ किसी भी विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है, अतः यह विभक्तिरहित संज्ञा है। जबकि 'बालक ने कलम तोड़ी' वाक्य में 'बालक' संज्ञा के साथ 'ने' विभक्ति का प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ 'बालक' विभक्तिसहित है।

विभक्तिरहित संज्ञाओं के बहुवचन के नियम :

1) विभक्ति- चिह्न -रहित रहने पर पुलिंग शब्दों का एकवचन और बहुवचन समान होता है -

अकारांत - बालक, घर, नर आदि।

इकारांत - ऋषि, कवि, मुनि आदि।

ईकारांत - भाई, स्वामी, सिपाही आदि।

उकारांत - गुरु, साधु, कृपालु आदि।

ऊकारांत - डाकू, भालू, आलू आदि।

एकारांत - दूबे, चौबे आदि।

ओकारांत - कोदो, रासो आदि।

औकारांत - जौ आदि।

2) विभक्ति-चिह्न-रहित आकारांत संस्कृत पुलिंग शब्द एकवचन और बहुवचन में समान रहते हैं। जैसे - कर्ता, दाता, राजा आदि।

3) विभक्ति-चिह्न-रहित संबंध वाचक, उपनामवाचक और प्रतिष्ठावाचक आकारांत पुलिंग शब्दों के रूप भी दोनों वचनों में समान होते हैं। जैसे - मामा, काका, भैया आदि।

4) अकारांत और आकारांत स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञा शब्दों के अंत में 'एँ' लगाने से बहुवचन बनाता है। जैसे - गाय - गायें, बहन - बहनें आदि।

5) इकारांत या ईकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अंतिम 'ई' को ह्रस्व करके उसमें 'याँ' जोड़ने अर्थात अंतिम 'इ' या 'ई' को 'इयाँ' कर देने से बहुवचन बन जाता है। जैसे - चिड़िया - चिड़ियाँ, गुड़िया - गुड़ियाँ आदि।

6) अ-आ-इ-ई के अलावा अन्य मात्राओं से अंत होने वाली स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अंत में 'एँ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। अंतिम स्वर दीर्घ 'ऊ' होने पर उसको ह्रस्व 'उ' बनाकर उसमे 'एँ' जोड़ देते हैं। जैसे - वस्तु - वस्तुएँ, बहू - बहुएँ आदि।

7) संज्ञा के पुलिंग अथवा स्त्रीलिंग रूपों में बहुवचन का बोध प्रायः 'गण', 'वर्ग', 'लोग' आदि लगाकर कराया जाता है। जैसे - छात्र-छात्रगण, आप-आपलोग आदि।

विभक्तिसहित संज्ञाओं के बहुवचन के नियम :

1) आकारांत एवं उकारांत संस्कृत शब्दों तथा ऊकारांत और औकारांत हिन्दी शब्दों के अंत में 'ओ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे - माता-माताओं, वधू-वधुओं आदि।

2) अकारांत और एकारांत शब्दों के अंतिम आ, अ, ए के स्थान पर 'ओं' रखकर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे - बालक-बालकों आदि।

3) इकारांत तथा ईकारांत शब्दों के अंत में 'यों' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे - निधि-निधियों, धनी-धनियों आदि।

4.5 काल

'काल' क्रिया का वह रूप है, जिससे उसके करने या होने के समय तथा पूर्णता अथवा अपूर्णता का ज्ञान होता है।

काल के भेद :

काल के तीन भेद हैं - 1) भूतकाल (Past Tense), 2) भविष्य काल (Future Tense) तथा 3) वर्तमान काल (Present Tense)।

- **भूतकाल -**

'भूतकाल' क्रिया का वह रूप है, जिससे बीते हुए समय - भूतकाल - में क्रिया के होने का ज्ञान हो। जैसे - 'राम ने खाना खाया था'।

भूतकाल के छह भेद होते हैं -

1) सामान्य भूत (Past Indefinite)

2) आसन्न भूत (Present Perfect)

3) पूर्ण भूत (Past Perfect)
4) अपूर्ण भूत (Past imperfect or Past Continuous)
5) संदिग्ध भूत (Doubtful Past)
6) हेतुहेतुमद् भूत (Conditional Past)

1) **सामान्य भूत :-** 'सामान्य भूत' क्रिया के उस रूप को कहते हैं, जिससे भूतकाल में क्रिया के किसी निश्चित या विशेष काल में होने की सूचना नहीं मिले। इस क्रिया-रूप से भूतकाल की सामान्य अवस्था का ज्ञान होता है। जैसे - 'राम ने आम खाया', 'मोहन चला गया'। इन वाक्यों में 'खाया' तथा 'चला गया' क्रिया-रूपों से भूतकाल की सामान्य अवस्था का ज्ञान होता है, क्रिया की पूर्णता या अपूर्णता की कोई विशेष सूचना नहीं मिलती है।

2) **आसन्न भूत :-** जिस काल से यह ज्ञात होता है कि क्रिया कुछ ही देर पहले समाप्त हुई है, उसे 'आसन्न भूत' कहते हैं। जैसे - 'उसने खाया है', गणेश ने देखा है'। इन वाक्यों में 'खाया है' तथा 'देखा है' से ज्ञात होता है कि क्रिया कुछ ही देर पहले समाप्त हुई है।

3) **पूर्ण भूत :-** जिस काल से यह ज्ञात हो कि क्रिया बहुत पहले समाप्त हो गयी उसे 'पूर्ण भूत' कहते हैं। जैसे - 'मनोज गया था'। इस वाक्य से यह ज्ञात होता है कि क्रिया बहुत पहले समाप्त हो चुकी है।

4) **अपूर्ण भूत :-** जिस काल से यह ज्ञात हो कि क्रिया भूतकाल में प्रारम्भ हुई, परंतु उसकी पूर्णता की सूचना नहीं मिले उसे 'अपूर्ण भूत' कहते हैं। जैसे - 'राम खा रहा था'। 'खा रहा था' से यह ज्ञात होता है कि क्रिया का संबंध भूतकाल से है, परंतु उसकी पूर्णता कि सूचना नहीं मिलती।

5) **संदिग्ध भूत :-** जिस काल से भूतकाल में क्रिया के होने में संदेह मालूम पड़े उसे 'संदिग्ध भूत' कहते हैं। जैसे - 'राम ने खाना खाया होगा'। इस वाक्य में 'खाया होगा' से 'खाना' क्रिया के भूतकाल में होने में संदेह मालूम पड़ता है, अतः यहाँ संदिग्ध भूत है।

6) **हेतुहेतुमद्भूत :-** जिस काल से यह ज्ञात हो कि कोई हेतु या कारण रहा होता तो क्रिया भूतकाल में हूई होती उसे 'हेतुहेतुमद्भूत' कहते हैं। जैसे - 'राम आता तो मैं जाता'।

- **भविष्य काल -**

जिस काल से आने वाले समय से होने वाली क्रिया की सूचना मिले, उसे 'भविष्य काल' कहते हैं। जैसे - 'राम आएगा'। इस वाक्य में 'आएगा' से ज्ञात होता है कि आने की क्रिया आने वाले समय में होगी, अतः इसे भविष्य का रूप मानेंगे।

भविष्य काल के तीन भेद हैं -

1) सामान्य भविष्य (Future Indefinite)
2) संभाव्य भविष्य (Future Conjunctive)
3) हेतुहेतुमद् भविष्य (Conditional Future)

1) सामान्य भविष्य :- जिस काल से भविष्य में होनेवाली क्रिया की काल-संबंधी सामान्य अवस्था का ज्ञान हो, उसे 'सामान्य भविष्य' कहते हैं। जैसे - 'मैं जाऊँगा'। इस वाक्य में 'जाऊँगा' से भविष्य काल के सामान्य रूप का ज्ञान होता है। इनमें किसी तरह की संभावना या शर्त का संकेत नहीं मिलता।

2) संभाव्य भविष्य :- जिससे किसी क्रिया के भविष्य में होने की संभावना प्रकट हो उसे 'संभाव्य भविष्य' कहते हैं। जैसे - 'हो सकता है, वह कल घर आए'।

3) हेतुहेतुमद् भविष्य :- भविष्य काल का वह रूप, जिसमें किसी क्रिया का होना किसी कारण की उपस्थिती पर निर्भर करता है, 'हेतुहेतुमद् भविष्य' कहलाता है। जैसे - 'राहुल पढ़े, तो विद्वान हो'। यहाँ राहुल का विद्वान होना उसके 'पढ़ने' पर निर्भर करता है।

- **वर्तमान काल -**

वर्तमान काल क्रिया का वह रूप है, जिससे बीत रहे (वर्तमान) समय में किसी क्रिया के होने का ज्ञान हो। जैसे - 'राम खा रहा है'।

वर्तमान काल के तीन भेद हैं -

1) सामान्य वर्तमान (Present Indefinite)
2) तात्कालिक वर्तमान (Present Continuous)
3) संदिग्ध वर्तमान (Doubtful Present)

1) सामान्य वर्तमान :- यह वर्तमान काल का वह रूप है, जिससे किसी क्रिया के वर्तमान काल में होने की सामान्य अवस्था का ज्ञान होता है। जैसे - 'राम पढ़ता है'। इस वाक्य में 'पढ़ता है' में पढ़ने की क्रिया के वर्तमान काल में होने का बोध तो होता है, लेकिन वर्तमान की किसी अवस्था विशेष की जानकारी नहीं मिल पाती।

2) तात्कालिक वर्तमान :- वर्तमान काल के जिस रूप से यह ज्ञान होता है कि क्रिया चल रही है, उसे 'तात्कालिक वर्तमान' कहते हैं। जैसे - 'तुम कहाँ जा रहे हो?' यहाँ 'जा रहे हो' से ज्ञात होता है कि जिस व्यक्ति से प्रश्न किया जा रहा है, उसके जाने की क्रिया चल रही है।

3)संदिग्ध वर्तमान :- जिस काल से क्रिया के वर्तमान काल में होने में संदेह मालूम पड़ता हो, अर्थात क्रिया हो रही है या नहीं, यह संदेह बना रहे, उसे 'संदिग्ध वर्तमान' कहते हैं। जैसे - 'राकेश आता होगा'। यहाँ 'आना' क्रिया में संदेह मालूम पड़ता है।

4.6 वाक्य शुद्धि

वाक्य भाषा की अत्यंत महत्वपूर्ण इकाई है। अतएव, लिखने या बोलने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे द्वारा जो कुछ लिखा या कहा जाए, वह बिलकुल स्पष्ट सार्थक व्याकरण की दृष्टि से शुध्द हो। वाक्यों के विभिन्न अंग यथास्थान होने चाहिए। साथ ही विराम- चिह्नों का भी उचित जगहों पर प्रयोग होना चाहिए।

वर्तनी एवं वाक्य शुद्धिकरण -

- वर्णमाला के किसी वर्ग के पंचम अक्षर के बाद उसी वर्ग के प्रथम चारों वर्णों में से कोई वर्ण हो तो पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार (.) का प्रयोग होना चाहिए। जैसे - कंकर, चंचल, गंगा, अंत आदि। किन्तु जब नासिक्य व्यंजन (वर्ग का पंचम वर्ण) उसी वर्ग के प्रथम चार वर्णों के अलावा अन्य किसी वर्ण के पहले आता है तो उसके साथ उस पंचम वर्ण का आधा रूप ही लिखा जाना चाहिए। जैसे - अन्य, जन्म, निम्न, किन्तु, परन्तु आदि । अंय, जंम, निंन, किंतु, परंतु, लिखना अशुद्ध है।
- अ, ऊ एवं आ मात्रा वाले वर्णों के साथ अनुनासिक चिन्ह को इसी चन्द्रबिन्दु के रूप में लिखा जाना चाहिए। जैसे - आँख, हँस, काँच, साँप, हूँ आदि। परन्तु अन्य मात्राओं के साथ

अनुनासिक चिन्ह को अनुस्वार के रूप में लिखा जाता है। जैसे - मैंने, खींचना, दायें, सिंचाई आदि।

- अंग्रेजी से हिन्दी में आए जिन शब्दों में आधे 'ओ' (आ एवं ओ के बीच की ध्वनि 'ऑ') की ध्वनि प्रयोग होता है, उनके ऊपर अर्ध चन्द्रबिन्दु लगानी चाहिए। जैसे - बॉल, कॉलेज, डॉक्टर, हॉल आदि।
- हिन्दी में विभक्ति चिन्ह सर्वनामों के अलावा शेष सभी शब्दों से अलग लिखे जाते हैं जैसे -
  गीता ने श्याम को कहा।
  मोहन को रुपये दे दो।
- संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाओं को अलग-अलग लिखा जाना चाहिए। जैसे - जाया करता है, पढ़ा करता है, खा सकते हो, जा सकते हो।
- सर्वनाम के साथ दो विभक्ति चिन्ह होने पर पहला विभक्ति चिन्ह सर्वनाम में मिलाकर लिखा जाएगा एवं दूसरा अलग लिखा जाएगा। जैसे -

आपके लिए, उसके लिए, इनमें से आदि।

सर्वनाम और उसकी विभक्ति के बीच 'ही' अथवा 'तक' आदि अव्यय हों तो विभक्ति सर्वनाम से अलग लिखी जायेगी। जैसे -

आप ही के लिए, आप तक को, उस ही के लिए आदि।

वर्तनी की अशुद्धियों के प्रमुख कारण निम्न हैं -

- उच्चारण दोष कई क्षेत्रों व भाषाओं में, स-श, व-ब, न-ण आदि वर्णों में अर्थभेद नहीं किया जाता तथा इनके स्थान पर एक ही वर्ण स, ब या न बोला जाता है जबकि हिन्दी में इन वर्णों की अलग-अलग अर्थ-भेदक ध्वनियों हैं। अतः उच्चारण दोष के कारण इनके लेखन में अशुध्दि हो जाती है। जैसे -

अशुद्ध	**शुद्ध**
कोसिस	कोशिश
सीदा	सीधा
सबी	सभी
सोर	शोर
अरम	आराम
पाणी	पानी

बबाल	बवाल
पाठसाला	पाठशाला
शब	शव
निपुन	निपुण
गुन	गुण

जहाँ 'श' एवं 'स' एक साथ प्रयुक्त होते हैं वहाँ 'श' पहले आयेगा एवं 'स' उसके बाद। जैसे- शासन, प्रशंसा, शासक आदि। इसी प्रकार 'श' एवं 'ष' एक साथ आने पर पहले 'श' आएगा फिर 'ष'। जैसे - शोषण, शेष, विशेष आदि।

- कोई, भाई, मिठाई, कई आदि शब्दों को कोयी, भायी, मिठायी आदि लिखना अशुध्द है। इसी प्रकार अनुयायी, स्थायी, वाजपेयी शब्दों को अनुयाई, स्थाई, वाजपेई आदि रूप में लिखना भी अशुध्द होता है।
- चिह्नों के प्रयोग सही जगह पर न करने पर भी अशुद्धियाँ हो जाती हैं और अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जैसा -

रोको, मत जाने दो।

रोको मत, जाने दो।

हिन्दी में अशुद्धियों के विविध प्रकार -

1. भाषा (अक्षर या मात्रा) संबंधी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	**शुद्ध**
बृटिश	ब्रिटिश
स्त्रीयाँ	स्त्रियाँ
रिषी	ऋषि
सामर्थ	सामर्थ्य
एकत्रित	एकत्र
निरिक्षण	निरीक्षण
हिंदु	हिंदु
संसारिक	सांसारिक
दम्पति	दम्पती
गरीमा	गरिमा
गुरू	गुरु
अज्ञानता	अज्ञान

2. लिंग संबंधी अशुद्धियाँ :

1) दही बड़ी अच्छी है। (बड़ा अच्छा)

2) आपने बड़ी अनुग्रह की। (बड़ा, किया)

3) मेरा कमीज उतार लाओ। (मेरी)

4) आत्मा अमर होता है। (होती)

5) उसने एक हाथी जाती हुई देखी। (जाता हुआ देखा)

6) गुणवान महिला। (गुणवती महिला)

7) मुझे चाय पीना है। (पीनी)

8) सुभद्रा कुमारी चौहान कवि हैं। (कवयित्री)

3. समास संबंधी अशुद्धियाँ :

दो या दो से अधिक पदों का समास करने पर प्रत्ययों का उचित प्रयोग न करने से जो शब्द बनता है, उसमें कभी-कभी अशुद्धियाँ रह जाती हैं। जैसे-

अशुध्द	**शुद्ध**
निरपराधी	निरपराध
प्राणीमात्र	प्राणिमात्र
पिताभक्ति	पितृभक्ति
महाराजा	महाराज
नवरात्रा	नवरात्र

4. संधि संबंधी अशुध्दियाँ :

अशुध्द	**शुध्द**
उपरोक्त	उपर्युक्त
सदोपदेश	सदुपदेश
सदेव	सदैव
अत्याधिक	अत्यधिक
सन्मुख	सम्मुख

दुरावस्था	दुरवस्था

5. विशेष्य-विशेषण संबंधी अशुद्धियाँ :

अशुध्द	**शुध्द**
लाचारवश	लाचारीवश
गोपन कथा	गोपनीय कथा
विद्वान नारी	विदुषी नारी
सुखमय शांति	सुखमयी शांति
महान कार्य	महत्कार्य

6. प्रत्यय-उपसर्ग संबंधी अशुद्धियाँ :

अशुध्द	**शुध्द**
सौन्दर्यता	सौन्दर्य
अज्ञानता	अज्ञान
भूगौलिक	भौगोलिक
निरस	नीरस
लाघवता	लाघव
मिठासता	मिठास

7. वचन संबंधी अशुद्धियाँ :

1. हस्ताक्षर, प्राण, दर्शन, आँसू आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है।
2. 'या', 'अथवा' का प्रयोग करने पर क्रिया एकवचन होती है। लेकिन

'और', 'एवं', 'तथा' का प्रयोग करने पर क्रिया बहुवचन होती है।

उदाहरण -

1) दो पुस्तक खरीद लाया। (पुस्तकें)
2) आज मैंने मंदिर में भगवान का दर्शन किया। (के, किये)
3) आज मेरा भाई आये। (मेरे)
4) फूल की माला लाओ। (फूलों)
5) यह पुस्तक किसका है? (ये, किसकी, हैं)

8. कारक संबंधी अशुद्धियाँ :

अ= अशुद्ध , शु. = शुध्द)

अ- मोहन घर नहीं है।

शु. - मोहन घर पर नहीं है।

अ- उसको काम करने दो।

शु. - उसे काम करने दो।

अ- चार बजने को पंद्रह मिनट हैं।

शु. - चार बजने में पंद्रह मिनट हैं।

अ- यहाँ बहुत से लोग रहते हैं।

शु. - यहाँ बहुत लोग रहते हैं।

8. शब्द-क्रम संबंधी अशुद्धियाँ :

अ. - वह स्कूल है जाता।

शु. - वह स्कूल जाता है।

अ. - 'पृथ्वीराज रासो' रचना चन्दवरदाई की है।

शु. - चन्दवरदाई की रचना 'पृथ्वीराज रासो' है।

9. वाक्य-रचना संबंधी अशुद्धियाँ एवं सुधार :

1) उचित विराम-चिह्न का प्रयोग न करने से अथवा शब्दों को उचित क्रम में न रखने पर भी अशुद्धियाँ रह जाती हैं।
2) वाक्य-रचना में कभी विशेषण का विशेष्य के अनुसार उचित लिंग एवं वचन में प्रयोग न करने से या गलत कारक-चिह्न का प्रयोग करने से अशुद्धियाँ रह जाती हैं।

उदाहरण :

अ. - मेरे भाई को मैंने रुपये दिये।

शु. - अपने भाई को मैंने रुपये दिये।

अ. - यह पुस्तक बड़ी छोटी है।

शु. - यह पुस्तक बहुत ही छोटी है।

अ. - वह प्रातः काल के समय घूमने जाता है।

शु. - वह प्रातः काल घूमने जाता है।

अ. - वह निरपराधी था।

शु. - वह निरपराध था।

अ. - वह मुझे देखा तो घबरा गया।

शु. - उसने मुझे देखा तो घबरा गया।

अ. - वह चित्र सुंदरतापूर्ण है।

शु. - वह चित्र सुंदर है।

अ. - वह गया।

शु. - वह चला गया।

अ. - हमने चाय अभी-अभी पिया है।

शु. - हमने चाय अभी-अभी पी है।

अ. - शेर को देखते ही उसका होश उड़ गया।

शु. - शेर को देखते ही उसके होश उड़ गये।

अ. - पेड़ों पर पक्षी बैठा है।

शु. - पेड़ पर पक्षी बैठा है।

सामान्यतः अशुद्धि किए जाने वाले प्रमुख शब्द :

अशुद्ध	**शुध्द**
अतिथी	अतिथि
अन्धेरा	अँधेरा
अहिल्या	अहल्या
अनूपम	अनुपम
आदेस	आदेश
आखर	अक्षर
ईमारत	इमारत
केन्द्रिय	केन्द्रीय
करूणा	करुणा

कुतूहल	कौतूहल
कोमुदी	कौमुदी
खेतीहर	खेतिहर
नर्क	नरक
चेत्र	चैत्र
तरिका	तरीका
तत्व	तत्त्व
तदानुकूल	तदनुकूल
दयालू	दयालु

4.7 शब्द-अर्थ सम्बन्ध

'शब्द' भाषा की सबसे सार्थक इकाई होती है। एक या अधिक वर्णों से बनी हुई स्वतंत्र एवं सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं। जैसे - 'मैं', 'वह', 'तू' आदि। शब्द के माध्यम से भाषा का समस्त कार्य-व्यापार चलता है। बिना शब्द के भाषा का अस्तित्व नहीं; कामता प्रसाद गुरु ने शब्द को परिभाषित करते हुये लिखा है - "एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।"

अर्थ के आधार पर शब्दों के दो भेद हैं - 1) सार्थक 2) निरर्थक

1) सार्थक : जिनसे किसी अर्थ का ज्ञान होता है, वे सार्थक शब्द हैं। जैसे - राम, श्याम, मोहन, सीधा आदि।

2) निरर्थक : जिनसे किसी अर्थ का ज्ञान नहीं होता, उन शब्दों को निरर्थक शब्द कहते हैं। जैसे - कल्ल, पथम आदि।

'का' और 'म' अक्षरों के मेल से 'काम' शब्द बना है। 'काम' शब्द से कार्य करने का अर्थ निकलता है, इसलिए इसे शब्द कहेंगे। शब्द उसे ही कहेंगे जिससे किसी अर्थ का भाव सामने आता हो। कई बार ऐसा होता है कि दो अक्षरों का मेल तो अवश्य होता है पर उससे कोई अर्थ सामने नहीं आता। जैसे - 'प', 'थ' और 'म' अक्षरों के मेल से 'पथम' शब्द बना है लेकिन हिन्दी में इसका कोई अर्थ नहीं। अतः इसे हम शब्द नहीं कहेंगे। व्याकरण में केवल सार्थक शब्दों का वर्णन किया जाता है। निरर्थक शब्दों का वर्णन उसमें तभी होता है, जब वे सार्थक बना लिए जाते हैं।

शब्द एक ध्वन्यात्मक संकेत होता है जो किसी वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है। शब्द जिस वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है वही उसका अर्थ होता है। शब्द के द्वारा जो प्रतीति होती है, उसे अर्थ कहते हैं। शब्द और अर्थ के संबंध में कुछ बाते ध्यान देने योग्य हैं -

1) शब्द से अर्थ कि प्रतीति दो प्रकार से होती है - 'आत्मप्रत्यक्ष' एवं 'परप्रत्यक्ष'। 'आत्मप्रत्यक्ष' उसे कहेंगे जिस वस्तु को हमने स्वयं देखा और उसके लिए निर्धारित शब्द के उच्चारण से अर्थ की प्रतीति हो। जैसे - 'आम'। आम को हमने स्वयं देखा है और आम के उच्चारण से उसके अर्थ की प्रतीति होती है। जिस शब्द से अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों पर आश्रित रहना होता है उसे परप्रत्यक्ष कहते हैं।
2) शब्द की महत्ता अर्थ के अभाव में नहीं होती। अमूर्त अर्थ का मूर्त रूप शब्द होता है।
3) शब्द और अर्थ का संबंध यादृच्छिक होता है। 'कलम' कहने से एक खास वस्तु का बोध होता है जिससे हम लिखते हैं। यह अर्थ यादृच्छिक है। यह हमारा माना हुआ है। कल से हम 'कलम' शब्द रेल के लिए रखे तो कलम कहने से रेल का बोध होगा। अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द के साथ अर्थ का स्थायी संबंध नहीं होता।
4) किसी एक वस्तु कि प्रतीति के लिए एक ही शब्द नहीं होता। एक वस्तु के लिए कई पर्यायवाची शब्द हो सकते हैं। जैसे - 'पानी' को 'जल' भी कहते हैं।

4.8 विलोम शब्द

'विलोम' का अर्थ होता है 'उल्टा'। जब किसी शब्द का उल्टा या विपरीत अर्थ दिया जाता है उस शब्द को विलोम शब्द कहते हैं। अर्थात एक-दूसरे के विपरीत या उल्टा अर्थ देने वाले शब्दों को विलोम शब्द क़हते हैं। इसे विपरीतार्थक शब्द भी कहते हैं। जैसे - 'सुख' शब्द का विलोम शब्द 'दुख' होगा। दो विलोम शब्द एक-दूसरे का विलोम होते हैं। जैसे 'सुख' का विलोम शब्द 'दुख' है तो 'दुख' का विलोम शब्द 'सुख' होगा। उदाहरणस्वरूप कुछ शब्द के विलोम शब्द हम देख सकते हैं -

शब्द	**विलोम शब्द**
आरंभ	अंत
अंधकार	आलोक
इच्छा	अनिच्छा

उपकार	अपकार
उत्कृष्ट	निकृष्ट
उतार	चढ़ाव
उचित	अनुचित
उपयोगी	अनुपयोगी
प्रश्न	उत्तर
एकत्र	सर्वत्र
एक	अनेक
आकाश	पाताल
आवश्यक	अनावश्यक

4.9 पर्यायवाची शब्द

'पर्याय' का अर्थ है - 'समान' तथा 'वाची' का अर्थ है - 'बोले जाने वाले'। अर्थात जिन शब्दों का अर्थ एक जैसा होता है, उन्हें 'पर्यायवाची शब्द' कहते हैं। यह बात ध्यान देने की है कि प्रत्येक पर्यायवाची शब्द बिलकुल समान अर्थ कि अभिव्यंचना नहीं करते। प्रत्येक शब्द का निश्चित अर्थ होता है जो किसी अन्य शब्द द्वारा प्रकट करना कठिन है। 'जलज' और 'पंकज' शब्द 'कमल' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। जल में पैदा होने वाली हर वस्तु को 'जलज' तथा 'पंक' अर्थात 'कीचड़' में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु को पंकज कहते हैं। जल और पंक में पैदा होने के कारण कमल को जलज और पंकज भी कहते हैं।

कुछ पर्यायवाची शब्द देखें जा सकते हैं -

1) **आग** - अग्नि, अनल, पावक, दहन।
2) **अंधकार** - अँधेरा, तिमिर, तम।
3) **अतिथि** - पाहुन, मेहमान, अभ्यागत।
4) **अनुपम** - अनूठा, अनोखा, अपूर्व, निराला।
5) **अन्य** - पृथक, और, भिन्न, दूसरा।
6) **आभूषण** - विभूषण, भूषण, गहना, अलंकार।
7) **असुर** - दैत्य, दानव, राक्षस, निशाचर।
8) **अहंकार** - गर्व, अभिमान, मद, घमंड।
9) **आँख** - लोचन, नयन, नेत्र, चक्षु, विलोचन, दृष्टि।

10) **आकाश** - नभ, गगन, अम्बर, आसमान, व्योम।

11) **आनंद** - हर्ष, सुख, प्रमोद, उल्लास।

12) **आँसू** - नेत्रजल, नयनजल, अश्रु।

13) **इच्छा** - अभिलाषा, चाह, कामना, लालसा, मनोरथ, आकांक्षा।

14) **उत्साह** - आवेग, जोश, उमंग।

15) **कमल** - पंकज, नीरज, सरोज, जलज।

16) **कोमल** - नाजुक, नरम, सुकुमार, मुलायम।

17) **कृपा** - प्रसाद, दया, अनुग्रह।

18) **चरण** - पद, पग, पाँव, पैर।

19) **क्रोध** - रोष, कोप, अमर्ष, कोह।

20) **झूठ** - असत्य, मिथ्या, मृषा, अनृत।

21) **तालाब** - सरोवर, जलाशय, पोखरा।

22) **दुख** - पीड़ा, कष्ट, व्यथा, वेदना, संताप, शोक।

23) **धरती** - पृथ्वी, भू, भूमि, धरणी, वसुंधरा, अचला, रत्नवती।

24) **ध्वनि** - स्वर, आवाज़, आहट।

25) **नया** - नूतन, नाव, नवीन, नव्य।

26) **पहाड़** - पर्वत, गिरि, अचल, नग, भूधर, महीधर।

27) **मनुष्य** - आदमी, नर, मानव, मानुष, मनुज।

28) **साँप** - सर्प, नाग, विषधर, भुजंग।

29) **संसार** - जग, विश्व, जगत, लोक, दुनिया।

30) **हाथी** - गज, हस्ती, मतंग।

31) **मृत्यु** - देहांत, मौत, अंत, स्वर्गवास, मरण।

32) **रात** - रात्रि, रैन, रजनी, निशा, यामिनी, तमी, निशि, यामा।

33) **निरादर** - अपमान, उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार, अवज्ञा।

34) **बादल** - मेघ, घन, जलधर, जलद, नीरद, सारंग।

35) **वृक्ष** - पेड़, पादप, विटप, तरु, द्रुम।

4.10 मुहावरा

'मुहावरे' ऐसे वाक्यांश होते हैं, जिनसे वाक्य सुसंगठित, चमत्कारजनक और सारगर्भ बनते हैं। मुहावरे का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं हो सकता। 'अंगार बरसना' या 'आँख मिलाना' मुहावरे हैं। हम इनका प्रयोग वाक्य के अंतर्गत ही करेंगे। मुहावरों में शब्दों का सामान्य अर्थ नहीं लिया जाता, वरन विशेष लाक्षणिक अर्थ लिया जाता है।

हिन्दी के कुछ प्रचलित मुहावरे, उनके अर्थ तथा वाक्य में प्रयोग को उदाहरणस्वरूप निम्न प्रकार से देख सकते हैं -

1) **अंगार उगलना** (अत्यधिक क्रोध में भला-बुरा कहना) :- बिना बात के राम मोहन पर चिढ़कर अंगार उगल रहा है।

2) **अंधे की लाठी** (एकमात्र सहारा) :- बुढ़ापे में उसकी बेटी ही अब उस अंधे की लाठी है।

3) **अपना उल्लू सीधा करना** (अपना मतलब निकालना) :- काम होते ही रोहित ने अपना उल्लू सीधा किया।

4) **आसमान टूट पड़ना** (अचानक विपत्ति आ पड़ना) :- सड़क हादसे में माँ-बाप की मृत्यु हो गयी। बेचारे पर आसमान टूट पड़ा।

5) **ईद का चाँद होना** (बहुत दिनों बाद दिखना) :- राम ने मोहन से कहा कि तुम तो ईद का चाँद हो गये।

6) **गागर में सागर भरना** (थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह देना) :- आज गीता ने गागर में सागर भर दिया।

7) **चार दिन की चाँदनी** (थोड़े दिनों के लिए सुख) :- उसे नहीं पता था की उसका आना बस चार दिन की चाँदनी है।

8) **जमीन आसमान एक करना** (पूरी जी जान लगा देना) :- राम ने परीक्षा में उतीर्ण होने के लिए जमीन आसमान एक कर दिया।

9) **टेढ़ी खीर** (कठिन काम) :- मोहन को कुछ समझना टेढ़ी खीर है।

10) **नजर रखना** (ध्यान रखना) :- भाई! इस लड़के पर ज़रा नजर रखना।

11) **कान पर जूँ तक न रेंगना** (कुछ भी ध्यान न देना) :- उसे लाख समझाओ, फिर भी उसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

12) **जान खाना** (तंग करना) :- देखो भाई, जान मत खाओ, मौका मिलते ही तुम्हारा काम कर दूँगा।

13) **नाक में दम करना** (परेशान करना) :- श्याम ने अपने दादा के नाक में दम कर रखा है।

14) **पसीना-पसीना होना** (लज्जित होना) :- जबसे मैंने उसकी यह चोरी पकड़ी तबसे वह मुझे देखकर पसीना-पसीना हो जाता है।

15) **सिर उठाना** (विरोध करना) :- अपने साथ हो रहे शोषण के प्रति सिर उठाना चाहिए।

16) **चेहरा बिगाड़ना** (बहुत पीटना) :- फिर बदमाशी की, तो चेहरा बिगाड़ दूँगा।

17) **दाँत खट्टे करना** (पराजित करना) :- कर्ण ने महाभारत-युद्ध में पांडवों के दाँत खट्टे कर दिये थे।

18) **कलम तोड़ना** (अत्यधिक लिखना) :- उसने इस पत्र में कलम तोड़ दिया।

19) **दल-दल में फँसना** (आफत में फँसना) :- मैं उस अपराधी पर दया कर दल-दल में फंस गया।

20) **हँसी उड़ाना** (उपहास करना) :- कृष्ण ने गणेश की हँसी उड़ायी।

4.11 लोकोक्तियाँ (कहावतें)

'लोकोक्ति' शब्द लोक और उक्ति शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ है - लोक में प्रचलित उक्ति या कथन। संस्कृत में 'लोकोक्ति' अलंकार का एक भेद भी है तथा सामान्य अर्थ में लोकोक्ति को 'कहावत' कहा जाता है। अतः किसी विशेष स्थान पर प्रसिद्ध हो जाने वाले कथन को लोकोक्ति कहते हैं।

लोकोक्तियाँ ऐसे कथन या वाक्य हैं जिनके स्वरूप में समय के अंतराल के बाद भी परिवर्तन नहीं होता और न ही लोकोक्ति व्याकरण के नियमों से प्रभावित होती है। अर्थात लिंग, वचन, काल आदि का प्रभाव लोकोक्ति पर नहीं पड़ता। लोकोक्ति के पीछे कोई एक कहानी अथवा घटना जुड़ी होती है। वही कहानी अथवा घटना कालांतर में जब लोगों की जुबान पर प्रचलित हो जाती है, तब 'लोकोक्ति' कहलाती है।

4.11.1 मुहावरा और कहावत (लोकोक्ति) की तुलना

मुहावरे	लोकोक्तियाँ
• मुहावरे वाक्यांश होते हैं, पूर्ण वाक्य नहीं। जैसे - अपना उल्लू सीधा करना, कलम	• लोकोक्तियाँ पूर्ण वाक्य होती है। इनमें कुछ घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। भाषा में

तोड़ना आदि।	प्रयोग की दृष्टि से विद्यमान रहती हैं। जैसे - चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात।
• मुहावरा वाक्य का अंश होता है, इसलिए उनका स्वतंत्र प्रयोग संभव नहीं है, उनका प्रयोग वाक्यों के अंतर्गत ही संभव है।	• लोकोक्ति एक पूरे वाक्य के रूप में होती है, इसलिए उनका स्वतंत्र प्रयोग संभव है।
• मुहावरे शब्दों के लाक्षणिक या व्यंजनात्मक प्रयोग हैं।	• लोकोक्तियाँ वाक्यों के लाक्षणिक या व्यंजनात्मक प्रयोग हैं।
• मुहावरे अतिशय पूर्ण नहीं होते।	• लोकोक्तियाँ अतिशयोक्तियाँ बन जाती हैं।
• मुहावरे किसी क्रिया को पूरा करने का काम करते हैं।	• लोकोक्ति का प्रयोग किसी कथन के खंडन या मंडन में प्रयुक्त किया जाता है।
• मुहावरे किसी स्थिति या क्रिया की ओर संकेत करते हैं। जैसे - हाथ मलना, मुँह फुलाना।	• लोकोक्तियाँ जीवन के भोगे हुये यथार्थ को व्यंजित करती हैं। जैसे - न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी, नाच न जाने आँगन टेढ़ा।

कुछ कहावतों को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है -

1) **अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता** (कोई बड़ा कार्य एक आदमी के वश की बात नहीं) :- आप क्या समझते हैं, अकेले ही मंदिर बना लेंगे ? इसमें समाज की मदद लेनी ही होगी। ठीक ही कहा गया है - 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता'।

2) **ऊँट के मुँह में जीरा** (ज़रूरत से बहुत कम) :- इन महोदय को दो रोटी से क्या होगा? यह तो ऊँट के मुँह में जीरे वाली बात है।

3) **गुरु गुर, चेला चीनी** (गुरु से शिष्य का आगे बढ़ जाना) :- ओमनाथ बच्चो को 'क, ख...' ही सीखाते रह गए और उनके कितने शिष्य डॉक्टर, इंजीनियर बन गये। गुरु गुर ही रह गये और चेले चीनी हुये।

4) **जान है तो जहान है** (जीवन ही सब कुछ है) :- नक्सल प्रभावित क्षेत्र में जान जाने का खतरा देख उसने नौकरी करने से मना करते हुये कहा - 'जान है तो जहान है'।

5) **आम के आम गुठलियों के दाम** (हर तरह से लाभ) :- रमेश के तो आम के आम गुठली के दाम हुये पड़े हैं।

6) **आटे के साथ घुन भी पिसता है** (अपराधी के साथ निरपराध भी दंडित होता है) :- सच ही कहा था गणेश चोर ने राम को की उसकी बात न मानकर कहीं ऐसा न हो की आटे के साथ घुन भी पिस जाए है।

7) **हाथ कंगन को आरसी क्या** (प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण क्या) :- लड़का शाम को मुझसे पढ़ने आएगा ही। देख लेना उसे कि वह अपनी उषा के लायक है कि नहीं। हाथ कंगन को आरसी क्या।

8) **एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है** (एक बुरा व्यक्ति पूरे समाज को बदनाम कर देता है) :- रमेश ने अपने घर में अवैध शराब बेचकर शान्तिप्रिय मोहल्ले को शराबियों का अड्डा बना दिया है। ठीक ही कहा गया है, एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है।

9) **काला अक्षर भैंस बराबर** (निरक्षर आदमी) :- ओमप्रकाश को बही खाते का हिसाब दिखाना काला अक्षर भैंस बराबर है।

10) **हाथी चले बाज़ार, कुत्ता भौंके हजार** (लोगों की बातों पर ध्यान न देकर अपने काम से मतलब रखना) :- लोगों की बाते सुने बिना रमेश जब ऊँचे पद पर पहुँचा तब यह बात सिद्ध हुई की हाथी चले बाज़ार, कुत्ता भौंके हजार।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. हिन्दी में लिंग निर्णय कितने प्रकार के होते हैं?
2. हिन्दी में कारकों की संख्या कितने प्रकार की होती है?
3. संस्कृत भाषा के दो पुलिंग शब्द बताइए जो हिन्दी में स्त्रीलिंग हैं।
4. वचन के प्रकार बताइये?
5. काल के कितने भेद होते हैं?

4.12 सारांश

हिन्दी में लिंग दो प्रकार के होते हैं - पुलिंग और स्त्रीलिंग। लेकिन एक बात जानने योग्य है कि हिंदी व्याकरण में जहाँ-जहाँ काठिन्य का आरोप किया गया है, उनमें लिंग का प्रथम स्थान है। लिंग-निर्णय सचमुच अभ्यास और स्मरण की अपेक्षा रखता है। लिंग निर्णय हिन्दी में एक पूर्ण मुश्किल कार्य है। लिंग निर्णय दो प्रकार से किया जाता है - 1. शब्द के अर्थ के आधार पर 2. उसके रूप के आधार पर।

संज्ञा अथवा सर्वनाम का वह रूप, जो वाक्य के अन्य शब्दों, विशेषतः क्रिया से अपना संबंध प्रकट करता है, 'कारक' कहा जाता है। प्रत्येक पूर्ण वाक्य में संज्ञाओं तथा सर्वनामों

का मुख्य रूप से क्रियाओं के साथ और गौण रूप से आपस में भी संबंध रहता है। जैसे - 'राम ने रावण को मारा'।

हिन्दी में वचन दो है - एकवचन और बहुवचन।

एकवचन (Singular Number) - जो एक संज्ञा का ज्ञान कराता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे - लड़का, गाय, लड़की, कपड़ा, नदी आदि।

बहुवचन (Plural Number) - जो एक से अधिक संख्या का ज्ञान कराता है, उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे - लड़के, गाये, लड़कियाँ, कपड़े, नदियाँ आदि।

'काल' क्रिया का वह रूप है, जिससे उसके करने या होने के समय तथा पूर्णता अथवा अपूर्णता का ज्ञान होता है। काल के तीन भेद है - 1) भूतकाल, 2) भविष्य काल तथा 3) वर्तमान काल।

किसी भाषा की समस्त ध्वनियों को सही ढंग से उच्चरित करने हेतु वर्तनी की एकरूपता स्थापित की जाती है। वर्तनी का सीधा संबंध भाषागत ध्वनियों के उच्चारण से है।

कामता प्रसाद गुरु ने शब्द को परिभाषित करते हुये लिखा है - "एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।"

'विलोम' का अर्थ होता है 'उल्टा'। जब किसी शब्द का उल्टा या विपरीत अर्थ दिया जाता है उस शब्द को विलोम शब्द कहते हैं। अर्थात एक-दूसरे के विपरीत या उल्टा अर्थ देने वाले शब्दों को विलोम शब्द क़हते हैं।

जिन शब्दों का अर्थ एक जैसा होता है, उन्हें 'पर्यायवाची शब्द' कहते हैं। 'मुहावरे' ऐसे वाक्यांश होते हैं, जिनसे वाक्य सुसंगठित, चमत्कारजनक और सारगर्भ बनते हैं। 'अंगार बरसना' या 'आँख मिलाना' मुहावरे हैं।

'लोकोक्ति' शब्द लोक और उक्ति शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ है - लोक में प्रचलित उक्ति या कथन। संस्कृत में 'लोकोक्ति' अलंकार का एक भेद भी है तथा सामान्य अर्थ में लोकोक्ति को 'कहावत' कहा जाता है। अतः किसी विशेष स्थान पर प्रसिद्ध हो जाने वाले कथन को लोकोक्ति कहते हैं

4.13 मुख्य शब्दावली

- **यादृच्छिक** : स्वतंत्र या ऐच्छिक
- **अलगाव :** दूरी, अलग रखने का भाव।

- **अपवाद :** सामान्य नियम से भिन्न बात।
- **प्रतीति :** प्रतीत होने की क्रिया।
- **संश्लिष्ट :** जोड़ा हुआ, मिलाया हुआ।
- **समीचीन :** यथार्थ, उचित।
- **सोपान :** सीढ़ी।
- **संभाव्य :** हो सकने योग्य।
- **संदिग्ध :** संदेहयुक्त।

4.14 'अपनी प्रगति जाँचिये' के उत्तर

1. दो ।
2. आठ ।
3. देवता, तारा।
4. दो, एकवचन एवं बहुवचन।
5. तीन, वर्तमान काल, भूतकाल तथा भविष्य काल।

4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. वचन की परिभाषा स्पष्ट करते हुये वचनों के प्रकार बताइये।
2. कारक की परिभाषा बताइये।
3. 'मुहावरा' और 'लोकोक्ति' के अंतर को बताते हुये उदाहरण प्रस्तुत करें।
4. पर्यायवाची शब्द की परिभाषा उदाहरण सहित दीजिये।
5. निम्न मुहावरों को वाक्यों द्वारा स्पष्ट कीजिये -

1) डूबते को तिनके का सहारा।
2) गागर में सागर भरना।
3) आँख का तारा।
4) आसमान टूट पड़ना।

6. निम्न लोकोक्तियों का अर्थ स्पष्ट करते हुये वाक्यों में प्रयोग कीजिये-

1) जान है तो जहान है।
2) काला अक्सर भैंस बराबर।
3) गेहूं के साथ घुन भी पिसता है।

4) अंधों में काना राजा।

4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. हिन्दी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरु, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।

2. हिन्दी भाषा : संरचना और प्रयोग, डॉ. भोलानाथ तिवारी व डॉ. रविंद्रनाथ श्रीवास्तव।

3. हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक व्याकरण - केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।

4- सामान्य हिंदी - पृथ्वी नाथ पाण्डेय, नालंदा प्रकाशन घर ।

5- हिंदी शब्द अर्थ प्रयोग - डॉ. हरदेव बाहरी ।

इकाई 5 निबंध-लेखन

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय

5.1 इकाई का उद्देश्य

5.2 निबंध क्या है?

5.3 निबंध की परिभाषा

5.4 निबंध के प्रकार

5.5 निबंध के तत्व

5.6 निबंध-लेखन कैसे करें?

5.7 निबंध-लेखन की विशेषताएँ

5.8 निबंध-लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियाँ

5.9 निबंध-लेखन

- 5.9.1 विज्ञान विषय से संबंधित निबंध
- 5.9.2 समसामयिक विषय से संबंधित निबंध
- 5.9.3 अरुणाचल प्रदेश से संबंधित निबंध
- 5.9.4 हिंदी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित निबंध
- 5.9.5 अन्य विषय

5.10 सारांश

5.11 मुख्य शब्दावली

5.12 अपनी प्रगति जाँचिए' के उत्तर

5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

लेखन एक कला है। इस कौशल में पारंगत होने के लिए अनुभव, अंतर्दृष्टि और भाषा तीनों की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत इकाई में हम निबंध-लेखन की बारीकियों को जानेगें। बात निबंध (essay) की करें तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि यह 'प्रबंध' (Treatise) और 'लेख' (Article) से किस तरह भिन्न है। 'निबंध' और 'प्रबंध' ये दोनों ही शब्द संस्कृत के हैं। जिस ग्रंथ में एक ही विषय के प्रतिपादनार्थ अनेक व्याख्याएँ संगृहीत होती थीं उसे 'निबंध' कहते थे। वहीं 'प्रबंध' का क्षेत्र निबंध की अपेक्षा अधिक व्यापक था। 'प्रबंध' में विभिन्न विषयों से संबंधित अनेक मत संगृहीत होते थे। कसावट दोनों की मुख्य विशेषता मानी जा सकती है। वहीं 'लेख' की चर्चा करें तो लेख का सामान्य अर्थ 'लिखा हुआ' है। 'लिखा हुआ' निबंध भी हो सकता है। किन्तु दोनों के विषय-प्रतिपादन शैली में अंतर है। व्यक्तित्व-विहीन किसी भी विषय का सांगोपांग विवेचन लेख होता है और व्यक्तित्वनिष्ठ, विषय का सुसंबद्ध प्रतिपादन निबंध कहलाता है।

5.1 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई की सहायता से आप:-

-निबंध क्या है और इसके बनावट के आधार को जान पायेंगे;

-निबंध लेखन की विभिन्न विधियों को जान पायेंगे;

-निबंध की विशेषताओं से अवगत हो पायेंगे;

-निबंध किस तरह लिखा जाना चाहिये इसकी आपको सूक्ष्म जानकारी मिलेगी;

-निबंध लेखन के दौरान किन सावधानियों को बरता जाना चाहिए इससे आप अवगत हो पाएंगे।

5.2 निबंध क्या है ?

निबंध शब्द की व्युत्पत्ति 'नि' उपसर्ग और 'बंध' धातु के संयोग से है। 'नि' शब्द का अर्थ है भली या विशेष प्रकार से और 'बंध' शब्द का अर्थ है बाँधना। प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबंध शब्द का प्रयोग एकत्र करना, बाँधना आदि अर्थों में ही होता था। भोजपत्रों आदि पर लिखी गई खुले पृष्ठों की पोथियों को बाँधने की प्रक्रिया निबंधन कहलाती थी। निबंधन का एक अर्थ एकत्र करना, एक साथ समेटना भी है। कालांतर में 'निबंधन' शब्द विकसित होकर, 'निबंध' के रूप में प्रयोग में आया। 'निबंध' क्रमहीन विचारों को भाषा के माध्यम से बांधने की प्रक्रिया स्वरुप एक लेखन विधा के रूप में सामने आई। इस विधा का जन्म फ्रांस में हुआ था। इस विधा के जन्मदाता और पितामाह मानतेन को माना जाता है।

5.3 निबंध की परिभाषा

यहाँ कुछ वुद्वानो द्वारा निबंध की परिभाषा प्रस्तुत की जा रही है -

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी स्वानुभूति से संपन्न एवं व्यक्तित्व से पूर्ण प्रतिबिंबित गद्य-रचना को निबंध मानते हैं। वे लिखते हैं "असंपूर्णता का विचार न करने वाला गद्य-रचना का वह प्रकार जिसमें स्वानुभूति की प्रधानता हो, विषय निरूपण में स्वतंत्रता हो, जिसमे लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हो, जिसकी शैली मौलिक तथा साहित्य कोटि की हो, निबंध कहलायेगा।"

आचार्य गुलाबराय के अनुसार "निबंध उस गद्य-रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर भी ऐसे विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया हो।"

अंग्रेजी-साहित्य के प्रथम निबंधकार लार्ड बेकन (Bacon) ने निबंध को despersed meditation (बिखरावयुक्त चिंतन) कहा है। वे लिखते हैं "The word essay is late, but the thing is ancient. For Seneca's Epistles to Lucillius, if one mark them well, are but essays, that is, dispersed meditation."

5.4 निबंध के प्रकार

डॉक्टर गणपति गुप्त ने निबंध के पाँच प्रकार (भेद)बताए हैं-

1. विचारात्मक निबंध

2. भावात्मक निबंध

3. वर्णात्मक निबन्ध

4. विवरणात्मक निबंध

5. आत्मपरक निबंध

1. विचारात्मक निबंध- गंभीर विषयों पर चिंतन मनन करके लिखे गए निबंध विचारात्मक निबंध होते हैं। इनमें बुद्धि की प्रधानता होती है और विचारसूत्रों की प्रमुखता रहती है। लेखक का हृदय पक्ष दबा रहता है तथा बुद्धि पक्ष की प्रबलता इन निबंधों में दिखाई पड़ती है। निबंधों में विचारों की एक श्रृंखला रहती है और सारे विचार पूर्वापर संबंध से एक सूत्र में जुड़े रहते हैं। निबंधों में कहीं व्यास शैली, कहीं समास शैली, और कहीं सूत्र शैली अपनायी जाती है। भाषा विषय के अनुसार प्रौढ़, गंभीर एवं संस्कृतनिष्ठ रहती है। हिंदी में इस प्रकार के निबंध लेखक हैं- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्याम सुंदरदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉक्टर नगेन्द्र आदि।

2. भावात्मक निबंध- भावात्मक निबंध में भाव पक्ष की प्रधानता होती है। भावात्मक निबंध लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। हिंदी में लिखे गए वे निबंध जिनमें वैयक्तिक संस्पर्श है, संस्मरणात्मक तथ्य दिये गये हैं अथवा जिनमें हास्य व्यंग्य की प्रधानता है, इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकार सबंधी निबंधों में से कुछ इसी कोटि के हैं। ऐसे निबंधों के लिए उनकी यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- "यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने

लिए कुछ न कुछ पाता रहा है।" उनके चिंतामणि में संकलित निबंध- उत्साह, करुणा, आदि इसी प्रकार के हैं। हिंदी में भावात्मक निबंधकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंधकार हैं- अध्यापक पुर्णसिंह। उनके निबंध आचरण की सभ्यता, मज़दूरी और प्रेम, पवित्रता ,आदि इसी प्रकार के भावनात्मक निबंध हैं।

3. वर्णात्मक निबन्ध- इस तरह के निबंधों में निबंधकार किसी घटना, तथ्य, दृश्य, वस्तु, स्थान आदि का क्रमबद्ध वर्णन इस प्रकार करता है कि पाठक के समक्ष वह दृश्य या घटना साकार हो जाती है। वर्णनात्मक निबंधों में बौद्धिकता एवं भावुकता का सामंजस्य रहता है। भाषा सरल एवं सुबोध रहती है तथा लेखक का ध्यान तथ्य निरूपण पर आधिक रहता है, कल्पना पर कम। हिंदी में बालकृष्ण भट्ट , बाबू गुलाबराय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर एवं रामवृक्ष बेनीपुरी के निबंध इसी श्रेणी के हैं।

4. विवरणात्मक निबंध-विवरणात्मक निबंधों में ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक घटनाओं का विवरण दिया जाता है तथा उनमें कल्पना का भी यथोचित समावेश होता है। वर्णन संवेदनशील एवं मार्मिक होते हैं तथा उनमें क्रमबद्धता पर विशेष बल नहीं होता। वर्णन का संबंध वर्तमान से होता है जबकि विवरण का भूतकाल से। हिंदी के प्रारंभिक निबंधकार-भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र , शुव पूजन सहाय ने विवरणात्मक निबंध लिखे हैं।

5. आत्मपरक निबंध-यद्यपि हर प्रकार के निबंध में लेखक के व्यक्तित्व पूरी तरह उभरभर सामने आता है। वर्तमान युग में लिखे जाने वाले लालित्य का समावेश भाषा, विषयवस्तु, शैली-शिल्प में किया जाता है। लेखक का पाण्डित्य, लोक संपृक्ति एवं भाषागत सौंदर्य ऐसे निबंधों में साफ झलकता है। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय हिंदी के प्रमुख ललित निबंधकार हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. विवेकी राय, देवेंद्र सत्यार्थी ने भी आत्मपरक निबंधों की रचना की है।

5.5 निबंध के तत्व

मुख्यत: निबंध तीन प्रमुख तत्व हैं। इन्ही के माध्यम से किसी भी निबंध को गढ़ा जाता है। ये तीन तत्व हैं- वैयक्तिकता, वैचारिकता और शैली।

वैयक्तिकता- कोई भी निबंध तब तक निबंध नही माना जा सकता जब तक कि उसमें से लेखक का व्यक्तित्व न झाँक रहा हो। निबंध विधा के जन्मदाता मानतेन ने कहा है कि अपने "निबंधों का विषय मैं हूँ और मैं अपनी मन की मौज में निबंध लिखता हूँ।" निबंध का असल सौंदर्य इसी वैयक्तिकता में रहता है।

वैचारिकता-वैचारिकता निबंध का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है निबंध ऐसी विधा है जिनमें विचारों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। किसी भी निबंध में वैचारिकता का अभाव उसके स्वरूप को बिगाड़ देता है वहीं विचारों के स्थान पर केवल तथ्यों का प्रयोग इसे निबंध की बजाय 'लेख' बना देता है।

शैली- शैली से तात्पर्य विधा को लिखते समय उस 'तरीके' से है जिससे वह अन्य रचनाओं से भिन्न प्रतीत होता है। शैली निबंध का प्राण है। निबंध के बाह्य सौंदर्य का आधार शैली ही है। चित्रमयता, विषय प्रतिपादन, शब्द-विन्यास आदि का सफल समन्वय शैली के अंतर्गत आते हैं। शैली ही वस्तुतः निबंधकार के व्यक्तित्व की परिचायक है। शब्द नियोजन, वस्तु-योजना तथा व्यक्तित्व- ये तीनों विशिष्टताएं शैली का निर्माण करती हैं।

5.6 निबंध-लेखन कैसे करें?

निबंध लेखन कैसे करें आइये इसे हम तीन महत्वपूर्ण चरणों द्वारा जाने-

पहला चरण - इस चरण के दो भाग है। एक निबंध-लेखन के पूर्व की स्थिति और एक निबंध-लेखन की आरंभिक स्थिति। निबंध-लेखन के पूर्व की स्थिति में आप विषय का चुनाव करते हैं। विषय निर्धारण के पश्चात उससे सम्बंधित प्रमुख बिन्दुओं को रफ़-कार्य के तौर पर नोट कर लेना चाहिए। प्रत्येक विषय अपने आप में विचारों की पोटली है। क्यूंकि निबंध ऐसी विधा है जहाँ निबंधकार स्वतंत्र रूप से अपनी बात रखता है तो यह और भी ज़रूरी हो जाता है की विषय के प्रति निबंधकार का तय राय हो अन्यथा निबंध लिखते वक्त विचारों का भटकाव उसको लेखन में बाधित करेगा ही साथ ही पाठक भी भ्रमित हो जायेगा की आखिर निबंध लिखने वाला व्यक्ति कहना क्या चाहता है? निबंध व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत किया जाये इसके लिये रफ़-कार्य के तौर पर आप निबन्ध-प्रारूप भी तैयार कर सकते हैं। निबंध-लेखन की आरंभिक स्थिति, प्रस्तावना के रूप में हमारे सामने आती है। प्रस्तावना, आरम्भ बिंदु है। यह एक ही अनुछेद का होता है। इसकी शुरुआत किसी पद, मुहावरे, गीत, व्यंग्य या फिर विषय के शाब्दिक अर्थ के द्वारा भी कर सकते हैं।

दूसरा चरण- यह प्रस्तावना के बाद की प्रक्रिया है जिसे हम निबंध-लेखन का मध्यभाग भी कहते हैं। यहाँ विषय-वस्तु का विस्तृत विवेचन किया जाता है। निबंध से जुड़े सामग्री को चार-पांच छोटे-बड़े अनुच्छेदों में इसे इस प्रकार व्यक्त कीजिये कि उसके सभी पहलुओं पर प्रकाश पड़ सके। मध्य भाग ही निबंध का विकास है। निबंध का असल स्वरुप यही तय करता है इसलिए आपको यहाँ भाषा को लेकर अत्यधिक सजग हो जाना पड़ेगा। विषय को निबंध के रूप में प्रस्तुत करने हेतु भाषा को कही सरल तो कहीं क्लिष्ट करना पड़ सकता है। यहाँ मूल विषय से भटकने की स्थिति का भी सामना करना पड़ सकता है इसके लिये आप मूल विषय को हमेशा ध्यान में रखे। क्योंकि विषय से भटकाव आपके निबंध को रुचिहीन बना सकती है। आपकी सम्प्रेषण क्षमता यहाँ अहम् भूमिका अदा करती है। बातें जितनी स्पष्ट होंगी, निबंध का सौंदर्य उतना ही बढ़ेगा।

तीसरा चरण- उपसंहार, निबंध का अंतिम भाग है। यहाँ आप विषय-वस्तु के विवेचन के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। निबंध का अंत ऐसा होना चाहिए कि उसका स्थायी प्रभाव पाठक पर पड़ सके। प्रस्तावना की भाँति उपसंहार भी एक ही अनुछेद का होता है। संक्षिप्त होने के बावजूद निबंध का ये अंश पाठक को प्रभावित करने की सबसे अधिक क्षमता रखता है। अतः इसे लिखते समय यह अवश्य ध्यान रखें की आप निबंध को आखिरी आकार दे रहे हैं। निबंध का अंत किसी लोकोक्ति, सूक्ति, अथवा अभीष्ट सामग्री के समावेश से कर सकते हैं।

5.7 निबंध लेखन की विशेषताएँ

- सीमित आकार- निबंध की मुख्य विशेषता इसका सीमित आकार है। निबंध की एक तय सीमा होती है जहाँ आपको अपने विचारों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करना होता है।
- व्यक्तित्व की अभिव्यंजना- लेखक के व्यक्तित्व का प्रकाशन निबंध का अनिवार्य तत्त्व है। पाश्चात्य लेखकों ने तो व्यक्तित्व की अभिव्यंजना के माध्यम के रूप में ही निबंध विधा को स्वीकार किया है।
- व्यवस्थित स्वरुप- निबंध में भावों और विचारों का प्रकाशन सुसम्बद्ध तथा व्यवस्थित रूप में होता है। उसका शिल्प सुसंगठित होता है। निबंध में विचारों की अभिव्यक्ति अगर व्यवस्थित ढंग से हो तो ये निबंध के
- विचार और भाव का संतुलन- चिंतन-तत्त्व के साथ भाव-तत्त्व की उपस्थिति भी अनिवार्य रूप से रहती है। विचारात्मकता के साथ भावनात्मकता का योग उसकी प्रमुख विशेषता है।

- पूर्णता- निबंध में स्वतः पूर्णता होनी चाहिए। उसकी संक्षिप्तता का अर्थ अपूर्णता नहीं है। उसके लघु आकार में पूर्णता होती है।
- रोचकता- निबंध में अन्य गद्य-रूपों की अपेक्षा रोचकता तथा जीवन्तता की मात्रा अधिक होती है।

8.8 निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियाँ

निबंध-लेखन एक कठिन कार्य है। आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल लिखते हैं "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की।'' निबंध लेखन तात्कालिक कार्य नहीं। यह किसी व्यक्ति के समस्त ज्ञान और जीवनानुभवों के आधार पर लिखा जाता है। अच्छा निबंध लिखने की एक और शर्त है वो है अभ्यास। अभ्यास द्वारा आप अपनी कमियों को जान पाते हैं। यह इकाई यह जानने में आपकी मदद करेगा कि निबंध लिखते समय हमें किन बातों का ध्यान रखना चाहिए-

- विषय का चयन बहुत ही सजगता से करना चाहिए, अगर आपके पास विषयों का विकल्प मौजूद है तो आप प्रयास करें की वही विषय चुने जिसे आप करीब से जानते हैं। कई बार हम ऐसे विषय चुन लेते हैं जो दिखने में बहुत ही सरल लगते हैं परन्तु इसका लेखन के रूप में निर्वाह, मुश्किल हो जाता है। ऐसी स्थिति न उत्पन्न हो अतः बहुत ही सोच-विचार कर विषय को चुने।

- निबंध-प्रारूप, आपके निबंध को एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध रखेगा। इसके बगैर ही अगर आपने लेखन आरम्भ कर दिया है तो आप विषय बिंदु से भटक सकते हैं।

- विषय के सन्दर्भ में आपके पास तथ्य होना ,निबंध को मज़बूत अकार देना है। मगर कई बार तथ्यों को सही तरीके से न प्रस्तुत कर पाना निबंध को कमज़ोर बना देता है। अतः यह आवश्यक है कि तथ्यों और निबंधों में मौजूद विचारों के बीच तालमेल अवश्य हो। यही आपके निबंध सही अकार देंगे।

- भाषा बहुत ही लचीली होनी चाहिए, लचीलेपन में एक गतिशीलता होती है।

- विषय सम्बंधित जानकारी होना अलग बात है और जानकारी को रोचक ढंग से प्रस्तुत करना अलग। निबंध विचारों को साझा करने का एक मंच है यहं अप तय समय के लिये खड़े होकर अपनी बात रखते हैं सहृदय आपकी बैटन को सुने इसके लिये यह अनिवार्य शर्त है की आपकी बातों में रोचकता हो।

- शब्दसीमा, सबसे अहम् बिंदु है। आरंभ में ही शब्दसीमा को ध्यान में रखकर यह तय कर लें कि प्रस्तावना मध्य भाग ओय फिर उपसंहार के लिये कितना स्थान निर्धारित करना है।

- यह ध्यान रखना चाहिए कि निबंध में अगर आप तथ्यों, किन्ही घटनाओं या आंकड़ों की जानकारी दे रहे हैं तो वे सटीक होने चाहिए। निराधार सूचनाओं से बचना चाहिए।

5.9 निबंध-लेखन

8.9.1 विज्ञान विषय से संबंधित निबंध

विज्ञान और युद्ध

विज्ञान और युद्ध दोनों के मूल में जायें तो पाएँगे कि ये दोनों ही एक दूसरे के एकदम उलट हैं। एक का निर्माण मानव समाज को विकास के पथ पर ले जाने के उद्देश्य से हुआ है तो वहीं दूसरे ने मानव सभ्यता को पीछे की ओर ढकेला है। वर्चस्व और असुरक्षा की भावना ने युद्ध को जन्म दिया और युद्ध ने विज्ञान को हथियार बना लिया। युद्ध पर साहिर लुधियानवी की एक बड़ी ही मशहूर नज़्म है ऐ शरीफ़ इंसानों इसकी कुछ की पंक्तियां इस तरह है-

जंग तो ख़ुद हीं एक मसला है

जंग क्या मसलों का हल देगी

आग और खून आज बख़्शेगी

भूख और अहतयाज कल देगी

यह सोचने वाली बात है कि आखिर जंग से क्या सच में किसी चीज़ का हल निकाला जा सकता है। यह तो अपने-आप में ही एक बहुत बड़ी विभीषिका, मृत्यु एंव सर्वनाश को दिया जाने वाला निमंत्रण है ।सदियों से, युद्ध लड़े जा रहे हैं। युद्ध लड़े ही नहीं जाते रहे, बल्कि इसे एक पवित्र धर्म मान लिया गया है। जब युद्ध को धर्म समझा जाता था, तब एक तो युद्ध विशेष भू-भाग तक सीमित हुआ करते थे और दूसरे उसके कुछ कठोर नियम-धर्म भी अवश्य थे। तब एक भू-भाग पर योद्धा लड़ते रहते थे, जबकि उसके आस-पास किसान हल जोतते या फसलें बोते-काटते रहा करते थे। ऐसा करते समय उन्हें अपने प्राणों या फसलों की हानि होने की कोई आशंका नहीं हुआ करती थी। पर जब से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने इस धरा पर कदम रखे हैं, विशेषकर युद्धक सामग्रियों का निर्माण शुरू किया है, युद्ध की अवधारणा और स्वरूप ही एकदम बदल गए हैं। आज का युद्ध मैदानों के बिना दफ्तर या जमीनदोज तहखानों में वैसे जनरलों द्वारा लड़ा जाता है। युद्ध हमसे हजारों मील दूर ही क्यों न हो रहा हो, प्राण जाने का भय सर्वत्र, हर पल-क्षण, छोटे-बड़े हर प्राणी को समान रूप में बना रहता है। 6 अगस्त 1945 की सुबह हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिकी वायु सेना द्वारा परमाणु बमबारी ने न जाने कितनी जाने तबाह कर दी। इस तरह की घटनाएँ विज्ञान और युद्ध पर सीधा सवाल खड़ा करती हैं।

आज युद्ध लड़ने के लिए सेनापतियों को किसी कुरुक्षेत्र, पानीपत या ट्रॉय के मैदान में आकर, बिगुल आदि बजाकर चुनौती देने और नारे लगाने नहीं पड़ते, बल्कि जैसा कि ऊपर कह आए हैं, सेनापति तो किसी सुरक्षित भूमिगत स्थान पर बैठे हो सकते हैं। उनके सामने एक और नक्शा दूसरी ओर इलेक्ट्रॉनिक पर्दा रहता है। उस पर कुछ धब्बे उठते हैं। कोई बटन दबकर अलार्म बजता है और युद्धक विमान शब्द की गति से भी तेज उडक़र जब बम बरसा वापिस आ चुके होते हैं, तब पता चल पाता है कि कहीं युद्ध हो रहा है। प्रथम विश्व-युद्ध तक तो फिर भी कुछ कुशल रही, पर द्वितीय विश्वयुद्ध में जब अमेरिका द्वारा हिराशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम छोड़े गए, तब से युद्धों का स्वरूप बहुत ही भयानक से भयानकतम हो गया है। इसी कारण आज छोटे-बड़े सभी चिंतित हैं कि यदि वैज्ञानिक निर्माणों में कोई गुणात्मक परिवर्तन न लाया जा सका, तो किसी दिन कोई निहित स्वार्थी मौत का सौदागर कहीं अणु, उदजन, कोबॉल्ट या अन्य प्रकार का कोई भीषणतम बम फेंककर सारी स्वतंत्रता सारी मानवता का दम घोंटकर रख देगा। कितना भयावह होगा वह दिन। ऊपर जिन भयानकतम बमों का उल्लेख किया गया है, वे तो हैं ही, उनके अतिरिक्त आज के विज्ञान ने ऐसे-ऐसे दूरमारक अस्त्रों, दमघोंटू गैसों, जैविक रसायनों का निर्माण कर लिया है कि इनके प्रयोग से एक देश दूसरे को घर बैठे ही विनिष्ट कर सकता है विनाश से अप्रभावित चाहे वह स्वंय भी नहीं रहेगा। बमों से, गैसों से निकलने वाले विषैले तत्व हमवा में घुलकर जानदार प्राणियों के ही नहीं वनस्पतियों तक के गले घोंटकर रख देंगे। वह सैलानी हवा जिधर भी रुख कर गुजर जाएगी, उधर ही विनाश-

बल्कि महानाश बरपा हो जाएगा। फिर भला किसी के भी इस प्रकार के मारक शस्त्रों-गैसों का प्रयोग करने वालों का भी सुरक्षित रह पाना कहां संभव हो पाएगा? दूसरों को मारने के इच्छुक स्वंय भी बच नहीं पाएंगे। इस प्रकार आज के वैज्ञानिक युग में युद्ध का अर्थ है न केवल मानवता का, बल्कि अन्य सभी प्राणियों, वनस्पतीयों एंव प्राणदायक तत्वों का भी सर्वनाश! उस भावी सर्वनाश की कल्पना से ही प्रकंपित होकर आज का वैज्ञानिक मानव बचाव का उपाय सोचने को विवश हो उठा है।

भावी युद्ध एंव विनाश से बचने का एक ही उपाय है। वह यह कि इस अथा्रत युद्धक सामग्रियों के निर्माण की दिशा में मानवता के कदम जहां तक बढ़ चुके हैं, वहीं रुक जाएं। तेयार सामग्रियों को पूर्णतया अटलांटिक साग की गहराइयों में डुबोकर विनष्ट कर दिया जाए। आगे से किसी भी स्तर पर, किसी भी रूप में युद्धक सामग्रियों के निर्माण पर सभी राष्ट्र सच्चे मन से प्रतिबंध लगा दें। विज्ञान की शक्तियों का प्रयोग मानवीय भाईचारे के निर्माण-विस्तार की दिशा में करें। यदि ऐसा न किया गया और किसी की भी भूल से युद्ध छिड़ गया तो विज्ञान का यह युद्धक अजगर बैठे-बिठाए सारी मानवता को निगल जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं। तब या तो मानवता बचेगी ही नहीं, यदि कोई बचेगा भी तो अपने आधे-अधूरेपन में मानवता के लिए धिक्कार और पश्चताप बनकर ही ज्यों-त्यों जी पाएगा। इन विषम स्थितियों को आने से रोकने की हरचंद्र कोशिश करनी चाहिए। वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ इस दिशा में प्रयासमूलक नारे तो अवश्य उछाल रहे हैं, पर लगता है कि ऐसा सच्चे मन से नहीं कर रहे हैं। तभी तो अभी तक कोई परिणाम सामने नहीं आ पाया है। निश्चय ही चिंता की बात है। विज्ञान केवल हमारे विकास का साधन होना चाहिए न कि विनाश का । साहिर लुधियानवी लिखते हैं-

टैंक आगे बढें कि पीछे हटें

कोख धरती की बाँझ होती है

फ़तह का जश्न हो कि हार का सोग

जिंदगी मय्यतों पे रोती है।

इसलिए ऐ शरीफ इंसानों

जंग टलती रहे तो बेहतर है

आप और हम सभी के आँगन में

शमा जलती रहे तो बेहतर है।

5.9.2 समसामयिक विषय से संबंधित निबंध

प्रदूषण की समस्या

प्रदूषण की समस्या आज मानव समाज के सामने खड़ी सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। पिछले कुछ दशकों में प्रदूषण जिस तेजी से बढ़ा है उसने भविष्य में जीवन के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगाना शुरू कर दिया है। संसार के सारे देश इससे होनेवाली हानियों को लेकर चिंतित है। संसार भर के वैज्ञानिक आए दिन प्रदूषण से संबंधित रिपोर्ट प्रकाशित करते रहते हैं और आनेवाले खतरे के प्रति हमें आगाह करते रहते हैं।

आज से कुछ दशकों पहले तक कोई प्रदूषण की समस्या को गंभीरता से नहीं लेता था। प्रकृति से संसाधनों को प्राप्त करना मनुष्य के लिए सामान्य बात थी। उस समय बहुत कम लोग ही यह सोच सके थे कि संसाधनों का अंधाधुंध उपयोग हानि भी पहुँचा सकता है| हम जितना भी प्रकृति से लेते, प्रकृति उतने संसाधन दोबारा पैदा कर देती | ऐसा लगता था जैसे प्रकृति का भंडार असीमित है, कभी ख़त्म ही नहीं होगा लेकिन जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ने लगी, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ता गया। वनों को काटा गया, अयस्कों के लिए जमीनों को खोदा गया। मशीनों ने इस काम में और तेजी ला दी। औद्योगिक क्रांति का प्रभाव लोगों को पर्यावरण पर दिखने लगा। जंगल ख़त्म होने लगे। उसके बदले बड़ी-बड़ी इमारतें, कल-कारखाने खुलने लगे। इससे प्रदूषण की समस्या हमारे सर पर आकर खड़ी हो गई।

आज प्रदूषण के कारण शहरों की हवा इतनी दूषित हो गई है कि मनुष्य के लिए साँस लेना मुश्किल हो गया है। गाड़ियों और कारखानों से निकलनेवाला धुआँ हवा में जहर घोल रहा है। इससे तेजी से वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। देश की राजधानी दिल्ली में तो प्रदूषण ने खतरे का निशान पार कर लिया है | कारखानों से निकलने वाला कचरा नदियों और नालों में बहा दिया जाता है|। इससे होनेवाले जलप्रदूषण के कारण लोगों के लिए अब पीने लायक पानी मिलना मुश्किल हो गया है। खेत में खाद के रूप में प्रयोग होनेवाले रासायनिक खादों ने खेत को बंजर बनाना शुरू कर दिया है|। इससे भूमि प्रदूषण की समस्या भी गंभीर हो गयी ह। इस तरह प्रदूषण तो बढ़ रहा है किंतु प्रदूषण दूर करने के लिए जिन वनों की जरुरत है वो दिन-ब-दिन कम हो रहे हैं।

प्रदूषण के कारण धरती का तापमान बढ़ रहा है। ओजोन लेयर में कई छेद हो चुके हैं। नदियों और समुद्रों में जीव-जंतु मर रहे हैं। कई देशों का मौसम बदल रहा है। कभी बेमौसम बरसात हो रही है तो कभी बिलकुल वर्षा नहीं हो रही | इससे खेती को बहुत नुकसान हो रहा है। ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है, जिससे समुद्र के किनारे जो देश और शहर हैं, उनके डूबने का खतरा बढ़ गया है|। हिमालय के ग्लेशियर पिघल रहे हैं|। जिससे गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र जैसी नदियों के लुप्त होने की संभावना आ गई है।

ऐसे गंभीर समय में यह आवश्यक हो गया है कि संसार के सारे देश मिलकर प्रदूषण की इस समस्या पर लगाम लगाए|। उद्योगों के लिए प्रकृति को नष्ट नहीं किया जा सकता। जब जीवन ही खतरे में पड़ रहा है तो जीवन को आरामदायक बनानेवाले उद्योग क्या काम आएँगे। अभी हाल ही में (१२ दिसंबर २०१५) संसार के १९६ देश प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए फ्रांस की राजधानी पेरिस में इकट्ठे हुए| थे। सबने मिलकर यह निश्चय किया है कि धरती के तापमान को मौजूदा तापमान से दो डिग्री से ज्यादा बढ़ने नहीं दिया जाएगा। देर से ही सही पर यह सही दिशा में बढाया हुआ कदम है। यदि इसपर वास्तव में अमल किया गया तो पेरिस अधिवेशन मनुष्य जाति के लिए आशा की स्वर्णिम किरण साबित होगी। उम्मीद है कि हम पर्यावरण की रक्षा के लिए सही कदम उठाएँगे और आनेवाली पीढ़ी को प्रदूषण के दुष्परिणामों से बचाएँगे।

5.9.3 अरुणाचल प्रदेश से संबंधित निबंध

अरुणाचल प्रदेश में साहित्य-लेखन

अरुणाचल एक पर्वतीय राज्य है जिसके अलग अलग पर्वतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न जनजातियाँ निवास करती हैं। इन जनजातियों के बीच भौगोलिक दूरी होने की वजह से इनकी अलग अलग भाषाएँ हैं जिनके बोलने वालों के बीच आपसी संवाद कठिन है। आज़ादी के पहले तक इन समुदायों के बीच भौगोलिक बाधा के कारन बहुत अधिक संवाद-संपर्क स्थापित नहीं हो पाया था। अंग्रेजों ने यहाँ आपसी समुदाय की संस्कृति की रक्षा के लिये इस इलाके में बाहरी लोगों के निर्बाध प्रवेश को रोक दिया था। इस वजह से अरुणाचल की अनेक जनजातियाँ अपने क्षेत्रों और भाषा तक ही सीमित थीं। आज़ादी के बाद अरुणाचली समाज का आपस में और

उसके साथ ही पड़ोसी राज्य असं से संपर्क बढ़ा। चूंकि अरुणाचल की कोई संपर्क भाषा नहीं थी इसलिए आरम्भ में असमिया अरुणाचल की संपर्क भाषा बन गयी और अब यह स्थान हिंदी ने ले लिया है। यहाँ अबतक तीन तरह के साहित्य मिलते हैं एक असमिया भाषा में , दुसरे इधर की स्थानीय भाषाओँ में और हिंदी में।

साहित्यिक गतिविधियों के आरंभिक दौर में असमिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसे जानने के लिये हमें लगभग आधी शताब्दी पीछे मुडकर देखना होगा- आधुनिक शिक्षा के प्रचार प्रसार के साथ अरुणाचली युवाओं ने असमिया भाषा में साहित्य लेखन आरम्भ किया। इन्ही युवाओं में लुम्मेर दायी एक थे। ये अरुणाचल के पहले रचनाकार के रूप में जाने गए। ये मूलतः उपन्यासकार थे और असमिया भाषा में ही साहित्य लेखन करते थे। 'पहरोर हिले हिले' (1959) इनका पहला उपन्यास इसके अतिरिक्त इन्होने उदायांचालर साधू (1959 ई.), 'पृथ्वीर हांहि' (1962 ई.), 'मोन आरू मोन'(1965 ई.), 'कन्यार मूल्य' (1965 ई.), एवं 'ऊपर महल' नामक उपन्यासों की रचना की। इनके अलावा श्री वाई. डी. थोंगची जी को उनकी असमिया कृति मौन उट मुखर हृदय पर साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ये मूलतः कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं। इनके रचना-कर्म के केंद्र में इनकी अपनी जनजाति की मान्यताएं एवं रीति-रिवाज़ हैं। इनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'सोनाम है' जिस पर एक फिल्म भी बन चुकी है। इसके अतिरिक्त उनके 'कमेंग हिमांतर साधू', 'लिड.जिंक', 'विष्णु कन्यार देशात, नमक उपन्यास एवं 'पापोर पुखुरी', 'मौन उट मुखर हृदय' एवं 'बांह फूलर गंद' नमक कथा संग्रह प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त श्री तागाड़ ताकी ने चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर 'बार्डर इमि' (सीमा अग्नि) नमक एक नाटक लिखा है, जो इस मामले में एक दुर्लभ पुस्तक है। अरुणाचल में असमिया भाषा में साहित्य लेखन और साहित्यकारों की समृद्ध परम्परा है।

असमिया के साथ-साथ अरुणाचल की स्थानीय भाषाओँ में भी कहानी, कवितायेँ लिखी गयी हैं। 'आदि' भाषा का पहला लेखक श्री ओकेप तायेंग को माना जाता है। वहीं गालो भाषा के श्रेष्ठ रचनाकारों में जुमसी सिराम का नाम लिया जाता है। कई ऐसे भी साहित्यकार भी रहे जिनकी पुस्तकें प्रकाशन के अभाव में आज तक उभर कर सामने नहीं आ पाई है।

सन 1962 में चीन के आक्रमण के बाद बड़ी संख्या में सेना के जवानों और शिक्षकों की भर्ती अरुणाचल में हुई। व्यापारी भी अरुणाचल में आये। इनमे से अधिकांश हिंदी भाषी थे। इससे अरुणाचल में हिंदी, विद्यालय से लेकर बाज़ार तक में बोली जाने लगी। पहले हिंदी को बस बोल चल के रूप में अपनाया गया पर अब स्थितियां बहुत बदल गयी हैं। वैसे तो हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति सबसे बाद में शुरू हुई लेकिन आज सबसे अधिक कहानियां, कवितायेँ इसी भाषा में लिखी जा रही हैं। जुमसी सिराम को हिंदी का पहला लेखक मन जाता है। 'शिला का रहस्य', 'जाई बोने' और 'मेरी आवाज़ सुनो' उनके बेहद चर्चित उपन्यास हैं। ताई तुगुंग नाम के युवा लेखक ने सबसे पहले अरुणाचली हिंदी में 'लाप्या' नामक एक नाटक लिखकर और उसके दस से अधिक बेहद सफल मंचन कर हिंदी की लोकप्रिय छवि को एक नया आयाम दिया है। वहीँ जोराम यालाम द्वारा रचित साक्षी है पीपल (कहानी संग्रह) , जंगली फूल (उपन्यास), जमुना बीनी तदार द्वारा 'जब आदिवासी गाता है' (कविता संग्रह) से यहाँ का साहित्य और भी परिपक्व हुआ है।

अरुणाचल से लेखकों का एक बड़ा वर्ग उभरकर सामने आ रहा है। अरुणाचली रचनाकारों ने जो कुछ लिखा वह अपनी अन्तः प्रेरणा एवं रचनात्मक निष्ठा के कारण। न उनके रचनाओं के छपने की चिंता रही न ही नाम कमाने की भूख। जिस हवा को महसूस किया उन्हें उसी तरह शब्दों में उकेर दिया।

5.9.4 हिंदी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित निबंध

प्रगतिवाद

हिंदी-साहित्य का इतिहास में आधुनिक काल में छायावाद के बाद आरंभ के चौथे चरण को प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्य-रचना का युग स्वीकार किया गया है। इसका आरंभ सन १९३६ के आस-पास से स्वीकारा जाता है। इससे पहले वाले छायावादी-युग की कविता कल्पना-प्रधान थी, पर अब कविगण कल्पना के आकाश से उतरकर जीवन के यथार्थ से प्रेरणा लेकर धरती पर पैर जमाने लगे। फलस्वरूप कविता की जो नई धारा चली, वह प्रगतिवादी काव्यधारा कहलायी जिसके बाद गद्य-साहित्य के विधायक रूपों में भी अब काल्पनिक आदर्शों के स्थान पर यथार्थ समस्याओं और प्रश्नों का चित्रण होने लगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी चेतना ने साहित्य के गद्य-पद्यात्मक सभी रूपों को समान स्तर पर प्रभावित किया।

मानव अपने मूल स्वभाव से ही परिवर्तनशील और प्रगतिवादी माना जाता है। फिर दूसरे विश्व-युद्ध के प्रभाव ओर परिणामस्वरूप अब जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा था। फ्रांस और रूस से होने वाली जन-क्रांतियों ने तो मानव-चेतना को प्रभावित किया ही, रूसो, वाल्तेयर, कार्लमाक्र्स और फ्रॉयड आदि चिंतकों के विचारों ने भी जीवन और समाज में आमूल-चूल परिवर्तन लाने की प्रेरणा प्रदान की। वर्ग-संघर्ष ने आर्थिक-औद्योगिक क्षेत्रों में संघर्ष की नींव डाली। वैज्ञानिक खोजों के कारण भी जीवन और समाज के परंपरागत रूपों में क्रांति आई। अब मनुष्य महज अपनी या व्यक्ति की नहीं, बल्कि समूह की बात सोचने लगा। जीवन में यांत्रिकता के बढ़ जाने के कारण कई तरह की जटिलतांए भी आती गई। भेद-भावों से ऊपर उठकर समानता का भाव भी जीवन-समाज में जागृत हुआ। इन सारे परिवर्तनों के मूल में विद्यमान चेतना को ग्रहण कर अपने गद्य-पद्यात्मक रूपों में साहित्य जो नए रूप में सिरजा जाने लगा, वही वास्तव में प्रगतिवाह कहलाता है। एक आलोचक के अनुसार- 'साहित्य अपने मूल स्वभाव में जीवन का अनुगामी तो होता ही है, कई बार उससे आगे बढक़र वह मानव-जीवन के लिए संभावित सत्यों एंव प्रगतियों की खोज भी करता है। इसी कारण वह जीवन के समान ही प्रगतिशील है। कवि और साहित्यकार किसी भी रूढ़ परंपरा के अधिक दिनों तक अनुयायी बनकर नहीं रह सकते। उनकी चेतना जीवन में आने वाले परिवर्तनों से अनुप्राणित होकर स्वत: ही नव्यता की ओर अग्रसर होती रहती है। उसी नव्यता की ओर अग्रसर होने वाली प्रवृति ने ही छायावादी युग के अंतराल से एक नई प्रवृत्ति को जन्म दिया। वह प्रवृत्ति थी मानव-प्रगतियों का दमन, शोषित-पीडित मानव के अधिकारों की ओर जीवन-समाज का ध्यान आकर्षित करना एंव नई सहज परिवर्तित बौद्धिक-वैज्ञानिक प्रगतियों की ओर मानव-चेतना को उन्मुख करने का सशक्त प्रयास। परिणामस्वरूप छायावादी स्वरों के मध्य से ही जो नया स्वर प्रस्फुटित किया गया।' यह मान्यता स्पष्ट संकेत करती है कि छायावादी वायवता के प्रतिकारस्वरूप ही हिंदी-काव्य क्षेत्र में प्रगतिवाद का आरंभ एंव विकास संभव हो सका। यह एक निश्चित सत्य है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि प्रगतिवाद का आरंभ सन १९३६ के आस-पास हुआ था। उसके चार वर्षों अर्थात सन १९४० तक इसा क्रमश: विकसित रूप सामने आने लगा। उसके बाद से आज तक की हिंदी-काव्य की यात्रा वास्तव में प्रगतिवाद के विभिन्न एंव विविध आयामों की यात्रा कही जा सकती है। छायावाद की एक धानहालावाद और दूसरी राष्ट्रवाद के रूप में विकसित हुई थी। इस राष्ट्रवादी-काव्यधारा का ही अगला पड़ाव प्रगतिवाद कहा जा सकता है। राष्ट्रवादी कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा रचित एक कविता से प्रगतिवाद का आरंभ स्वीकार किया गया है। उस प्रसिद्ध कविता के आरंभ की पंक्तियां देखिए –

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,

जिससे उथल-पुथल मच जाए।

नियु और उपनियों के ये,

बंधर टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाएं,

विश्वभर की पोषक वीणा-

के सब तार मूक हो जाएं।'

यहां जो उथल-पुथल यानि क्रांति मचाने और विश्वभर की वीणा के तार टूटने अर्थात परंपराओं, अंध रूढिय़ों के समाप्त होने की कामना की गई है, वास्तव में वही प्रगतिवाद की मूल चेतना, लक्ष्य, प्रयोजन एंव हुंकार भी है। विद्वान यह भी मानते हैं कि छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता से भी प्रगतिवादी चेतना के भाव और विचार दिखाई देने लगते हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र प्रगति-कामना से बचा न रह सका। सभी जगह अस्तित्व रक्षा का गहरा भाव जागकर 'सड़े-गले अतीत के विरुद्ध गहरा असंतोष एंव विद्रोह का स्वर मुखरित करने लगा।' कवि और साहित्यकार उन सबके स्वर-से-स्वर मिलाकर अपने-अपने सृजन में दत्तचित हो उस सबका प्रतिनिधित्व करने लगे। फलस्वरूप यह नई प्रगतिवादी चेतना चारों ओर हर स्तर पर मानव-मन और जीवन-समाज को आंदोलित करने लगी। इसी संबल को पाकर शोषित-पीडि़त जन अपने को मानव समझकर संघर्षरत होने लगा। उस संघर्षमयी चेतना का काव्यात्मक चित्रण ही साहित्य-जगत में प्रगतिवाद के नाम से जाना और पुकारा जाने लगा।

कार्लमार्क्स के द्वंदात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन में प्रभावित प्रगतिवाद, पूंजीवाद और पूंजीवादी चेतना को मानवता का सबसे बड़ा दुश्मन स्वीकार करता है। इसकी मान्यता है कि जब श्रम और पंूजी का समान विभाजन होने लगेगा, तभी जाति-वर्गहीन समाज की स्थापना संभव हो सकेगी। जो इस वाद का चरम लक्ष्य है। जन-कल्याण और समाजवादी समाज की स्थापना के इस लक्ष्य को पाने के लिए प्रगतिवाद वर्ग-संघर्ष को आवश्यक मानता है। इसके लिए ही कवि सर्वहारा वर्ग की समस्याओं को काव्यों में उतराते, व्यक्ति का विरोध कर समूह का महत्व स्वीकारते, सभी रूढिय़ों का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं। कवि और लेखक आम जनों को सभी तरह की कुंठाओं से छुटकारा दिलाने का प्रयास भी करते हैं। यही कारण हे कि प्रगतिवादी साहित्य में कल्पना को कतई महत्व नहीं दिया जाता। उसके स्ाि◌ान पर जीवन में यथार्थ का ही उदघाटन किया जाता है। सभी परंपरागत विषयों की युगानुकूल नवीन एंव उपयोगितावादी व्याख्यांए की जाती हैं ताकि सभी प्रकार के आडंबरों, पाखंडों और कुरूपताओं से जीवन को मुक्ति मिल सके। धर्म, भाज्य और भगवान को भी नितांत अनुपयोगी, मात्र विडंबना और शोषित-पीडि़त को और भी धोखे में रखकर शोषण के अस्त्र कहा जाता है। कुल मिलाकर सामूहिक स्तर पर और भौतिक मूल्यों के आधार पर मानवता का हित साधना ही प्रगतिवादी काव्यधारा का चरम लक्ष्य है।

प्रगतिवादी काव्य-चेतना में यथार्थ बोध और यथार्थ चित्रण के नाम पर कई तरह की कमियां भी रेखाांकित की जाती है। मानवता की मात्र कुरूपताओं का ही चित्रण, वह भी कई बार अश्लील वीभत्स रूप में, प्रगतिवादी धारा की सबसे प्रमुख कमी मानी जाती है। यथार्थ और प्रगति का अर्थ केवल वीभत्स, कुरूप और गंदगी का यथातथ्य चित्रण ही नहीं होत, अच्छे और स्वरूपवान का चित्रण करना भी हुआ करता है। केवल निराशाओं और कुंठाओं का चित्रण करने वाला साहित्य भी सच्चे अर्थों में प्रगतिवादी नहीं हो सकता। इसके स्थान पर मानवता का आशावादी यथार्थ स्वर मुखरित होना चाहिए। हमारे विचार में कलात्मकता को तिलांजलि देकर, भाषा की भास्वरता के स्थान पर मनगढं़त बातों को पश्रय देकर भी मानव-प्रगतियों का वास्तविक काव्यात्मक चित्रण संभव नहीं हो सकता। इसी प्रकार वर्ग-संघर्ष की तलवार लटकाए रखना भी उचित नहीं कहा जा सकता। इन बातों का निराकरण करके इस तथ्य का ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि जीवन और साहित्य आत्मिक स्तर पर स्वत: स्फूर्त ढंग से प्रगतिवादी हुआ करते हैं। आवश्यकता है कि उस स्वत: स्फूर्त अस्मिता को हमेशा जगाए और उजागर रखा जाए। तभी प्रगतिवाद का वास्तविक लक्ष्य पाया जा सकता है।

5.9.5 अन्य विषय

मजहब नहीं सिखाता आपस मे बैर रखना

मानव सभ्यता ने अपने विकास की गति के लिए धर्म का निर्माण किया। प्रत्येक धर्म का केंद्र मानवीय भावों का संरक्षण ही रहा है। जब धर्म के मूल में ही प्रेम, भाईचारा है प्रश्न यहाँ खड़ा होता है कि धर्म के ही आड़ में नफ़रत कैसे पनप सकती है? मजहब, धर्म, फिरका, सम्प्रदाय और पंथ आदि सभी भाववाचक संज्ञाएँ एक ही पवित्र भाव और अर्थ को प्रकट करती हैं। सभी का व्यापक अर्थ उच्च मानवीय आदर्शों और आस्थाओं से अनुप्राणित होकर विभिन्न नामों वाले एक ही ईश्वर को हाज़िर-नाज़िर मान सत्कर्म करना और समग्र रूप से अच्छा बनना है। ऐसे कर्म कि जिनके करने से मानवता ही नहीं, प्राणी मात्र और जड़ पदार्थों का भी कल्याण हो सके। इस मूल विचार से हटकर संकीर्ण-संकुचित हो जाने वाला भाव मजहब-धर्म आदि कुछ न होकर महज स्वार्थ हुआ करता है।

मजहब, धर्म, फिरका, सम्प्रदाय और पंथ वह नहीं होता कि जो मात्र बाह्य आचार ही सिखाता है और इस प्रकार एक मनुष्य को दूसरे से दूर ले जाती है। मजहब और धर्म कच्चे धागे की डोर भी नहीं होते कि जो किसी के स्पर्श मात्र से टूटकर बिखर जाएं या किसी वस्तु का धुआँ मात्र लगाने से ही अपवित्र होने की सनसनी पैदा कर दे। मजहब और धर्म तो अपने आपमें इतने पवित्र, महान और शक्तिशाली हुआ करते हैं कि उनका स्पर्श पाकर अपवित्र भी पवित्र बन जाय करते हैं। मजहब-धर्म ईंट-गारे के बने हुए भवन भी नहीं है कि जिनकी क्षति उदात्त मानवीय भावनाओं की क्षति हो और चारों तरफ़ ऐसा कहकर बावेला खड़ा किया जाए। नहीं, धर्म-मज़हब आदि इस प्रकार की समरत स्थूलताओं, कह्याचारों से ऊपर हुआ करते हैं। ऊपर रहने वाले ही जीवित रहकर अपने अनुयायियों के लिए प्रेरणा-स्त्रोत भी बने रहते हैं। अन्यथा अपनी ही भीतरी दीर्बलताओं से नष्ट हो जाया करते हैं। साथ ही अपने अनुनायियों के नाश का कारण भी बना करते हैं।

कभी भी धर्म या मजहब हमें अपने को उच्च या श्रेष्ठ समझने, दूसरे को नीच या हीन समझकर भेद-भाव करने की शिक्षा नहीं देता। सभी मजहब समानता के पक्ष-पाती हैं। सभी के सुख-दुख को समान समझ उन्हें भरसक दूर करने की प्रेरणा देते हैं। वस्तुतः मानवता, अपनी जातीयता और राष्ट्रीयता ही मजहब, धर्म और पंथ हुआ करती है। जो ऐसा नहीं समझते, उन्हें किसी देश तो क्या इस धरती पर भी बने रहने का अधिकार नहीं है। बड़े खेद की बात है कि आज इन व्यापक और पवित्र भाववाचक संज्ञाओं की गलत-शलत व्याख्याएँ करके कुछ लोग स्वयं तो नाहक परेशान होते ह रहते हैं, दूसरों के लिये भी विनाश एवं परेशानियों की सामग्री जुटाते रहते हैं। ऐसे लोगों का प्रत्येक स्तर पर बहिष्कार और कठोर दमन परम आवश्यक है। उन्हें जड़-मूल से मिटा दिया जाना चाहिए।

हर समझदार व्यक्ति ने धर्म-मजहब की वास्तविक मर्यादा को समझ-बूझकर प्रेम और भाईचारे का ही संदेश दिया है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में इस तथ्य को पहचानकर ही अलामा इकबाल ने अपनी काव्यमयी वाणी में यह उचित संदेश दिया था-

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।

हिंदी हैं, हमवतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा।

आज भी इस सुवित्वको सत्य-संभावित मानकर इसके अनुसार आचरण करके गई देश-जाति में शांति-सुरक्षा स्थापित की जा सकती है।

5.10 सारांश

निबंध शब्द का शाब्दिक अर्थ व्यवस्तित तरीके से बंधना है। विचारों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना ही निबंध है। निबंध में विचारों की प्रधानता ज़रूर रहती है लेकिन इसे साहित्य की विधा बनाती है इसकी शैली। निबंध शैली की अन्य वैचारिक रूपों से भिन्न होती है। इसमें विचार को रोचक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है जिससे लेखकीय व्यक्तित्व का प्रकाशन हो। निबंध के पांच प्रकार होते हैं- विचारात्मक निबंध, भावात्मक निबंध, वर्णात्मक निबन्ध, विवरणात्मक निबंध और आत्मपरक निबंध। गंभीर विषयों पर

चिंतन मनन करके लिखे गए निबंध विचारात्मक निबंध होते हैं। भावात्मक निबंध में भाव पक्ष की प्रधानता होती है। इस तरह के निबंध लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। वर्णात्मक निबन्ध- इस तरह के निबंध होते हैं जहाँ किसी घटना, तथ्य, दृश्य, वस्तु, स्थान आदि का क्रमबद्ध वर्णन इस प्रकार करता है कि पाठक के समक्ष वह दृश्य या घटना साकार हो जाती है। वर्णनात्मक निबंधों में बौद्धिकता एवं भावुकता का सामंजस्य रहता है। विवरणात्मक निबंधों में ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक घटनाओं का विवरण दिया जाता है तथा उनमें कल्पना का भी यथोचित समावेश होता है। वर्णन संवेदनशील एवं मार्मिक होते हैं तथा उनमें क्रमबद्धता पर विशेष बल नहीं होता। आत्मपरक निबंधों में लेखक का पाण्डित्य, लोक संपृक्ति एवं भाषागत सौंदर्य साफ झलकता है। बात निबंध के मुख्य तत्वों की करें तो ये हैं- वैयक्तिकता, वैचारिकता और शैली। सीमित आकार, व्यक्तित्व की अभिव्यंजना, व्यवस्थित स्वरुप, विचार और भाव में संतुलन, पूर्णता और रोचकता निबंध की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

अपनी प्रगति जाँचिये

प्रश्न 1. निबंध विधा का जन्म किस देश से हुआ?

a. फ्रांस

b. जर्मनी

c. भारत

d. चीन

प्रश्न 2. आचार्य गुलाबराय के अनुसार निबंध के कितने भेद हैं ?

a. तीन

b. चार

c. पाँच

d. दो

प्रश्न 3. किस विद्वान ने निबंध को despersed meditation (बिखरावयुक्त चिंतन) कहा है।

a. लार्ड बेकन

b. मानतेन

c. आचार्य गुलाबराय

d. डॉक्टर जॉनसन

प्रश्न 4. निबंध विधा के जनक किस विद्वान् को कहा जाता है?

a. लार्ड बेकन

b. मानतेन

c. आचार्य गुलाबराय

d. डॉक्टर जॉनसन

5.11 मुख्य शब्दावली

- अभिव्यंजना- विचारों एवं भावों को प्रकट करना
- कालांतर- अपने समय के बाद होनेवाला
- निर्वाह- निबाहना
- प्रतिबिंबित- जिसकी परछाईं पड़ती हो
- फ़तह- जीत
- बंधर-
- मूक- चुप
- सांगोपांग- अंगों उपांगो सहित, अच्छी तरह से
- स्वानुभूति- अपना अनुभव

5.12 'अपनी प्रगति जाँचिए' के उत्तर

1. फ्रांस

2. पाँच

3. लार्ड बेकन

4. मानतेन

5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. निबंध क्या हैं? इसकी विषेताओं पर प्रकाश डालिये।
2. निबंध के प्रकारों पर प्रकाश डालिये।
3. निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियों को बताएँ।
4. निबंध अन्य विधाओं से किस प्रकार भिन्न है?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित विषयों में से किन्ही तीन पर अपने शब्दों में निबंध लिखिए-

1. जंगल
2. गांवों में शिक्षा
3. साम्प्रदायिकता का विष
4. नारी और नौकरी
5. बाल श्रमिक समस्या
6. साहित्य का उद्देश्य

5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- हिंदी का गद्य साहित्य: डॉ. रामचंद्र तिवारी
- आधुनिक हिंदी निबंध: राजेश शर्मा, विक्रम प्रकाशन,दिल्ली।
- गद्य की पहचान: अरुण प्रकाश, अंतिका प्रकाशन, दिल्ली।
- साहित्यिक निबंध: द्वारिका प्रसाद सक्सेना, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
- हिंदी विधाएँ: स्वरूपात्मक अध्ययन: डॉ. बैजनाथ सिंघल, हरियाणा ग्रंथ अकादमी।
- निबंध मुक्त : डॉक्टर ओमप्रकाश सारस्वत
- निबंधकार पं. विद्यानिवास मिश्र : श्रुति मुखर्जी

Institute of Distance Education
Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 | Ide Rgu | Ide Rgu | helpdesk.ide@rgu.ac.in